हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

# चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

भगवान् श्री शङ्कराचार्य विरचित

## मन्त्र-मातृका-पुष्पमाला-स्तोत्र

( देखिए, पृष्ठ ६ )

इस संसार में ईश्वर की पूजा के दो प्रकार हैं—१ बाह्योपचार-विधि से की जानेवाली 'बाह्य-पूजा' तथा २ मानसोपचार-विधि से की जानेवाली 'मानसिक पूजा'। 'मानसोपचार-विधि' से की जानेवाली पूजा अत्यन्त सरल और सु-साध्य है। 'मानस-पूजा' में पूजा करनेवाला एक ओर अपने मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार को 'विषय-वासना' से हटाता है, तो दूसरी ओर पूर्ण श्रद्धा के साथ—विशुद्ध भावना - मयी क्रियाओं द्वारा एक-मात्र सत्य, प्रकाश-मय अपने 'इष्ट-देव' का स्मरण करता है, जिससे देह, प्राण, मन और बुद्धि आदि की बाधाएँ क्रमशः दूर हो जाती हैं और अन्त में 'इष्ट-देव' आविर्भूत हो जाते हैं।

यह प्रति ४-५० रु० / वार्षिक मूल्य ५०-०० रु०

# मारण

कङ्कालो का पुत्र स्वयं मैं महा - भयानक, 'महा-काल - भैरव' संज्ञा का जग - संहारक।
धक्-धक् जलते तीन नेत्र मेरे भय - कारी, लप् - लप् करती विकट जीभ योजन-विस्तारी ।।

चाट-चाट अरि-रक्त तृप्त होता निशि-वासर, काट-काट अरि-मुण्ड-माल होती अति भय-कर।
पद-तल करता दाब-दाब चूरण गिरि ऊँचे, अरि-गण लेता चाब-चाब के निगल समूचे ।।

अपनी माँ को आज जगाने को मैं आया, षड्-रिपु एवं अष्ट-पाश - पशुओं को लाया।
नाग-पाश में बाँध कण्ठ दे-देकर झटके, सिर पर ज्वलित त्रिशूल रखे लाया मरघट में ।।

जाग, जाग, री, महा-भयानक भीषण-नैनी ! जाग, जाग, री, प्रलयङ्करी ! महा-भय ऐनी।
जाग, जाग, री, प्रलय ङ्कर ताण्डव की कारिणि, जाग जाग, री, चण्ड-मुण्ड के मुण्ड-धारिणि ।।

रक्त-बीज की रक्त-चाटनी, जाग, जाग, री, हुङ्कारहि से जग उचाटनी, जाग, जाग, री।
जाग, जाग, री, लप-लपात-सी जिह्वा-वाली, जाग, जाग, री, धँसे अग्नि-दृग की कङ्काली ।।

जाग, जाग, खट्वाङ्ग-अहि-शूल-पाशिनी, जाग, जाग, अतिशय कठोर-तम अट्ट-हासिनी।
जाग, जाग, उठ, मृत्यु-नृत्य-नर्तकि उन्मादिनी, जाग, जाग, उठ, महा-भयानक रव-निनादिनी ।।

जाग, जाग, ओ, खड्ग-मुण्ड-अहि-खप्पर-वाली, जाग, जाग, ओ, रक्त-सुरा-मद की मतवाली।
शव-वाहिनि ! तू जाग, जाग, उठ भूखी-प्यासी, जग-संहारक, महा-भयानक त्याग उबासी ।।

उठ, उठ, तेरा पुत्र अमित पशु लेकर आया, अँगड़ाई दे छोड़, देर से हूँ उकताया।
देहाध्यास मसान बना कर तुझको अर्पित, मार 'मार' को, शव-'आसन' यह तुझे समर्पित ।।

काट 'क्रोध' को रक्त 'पाद्य' में ले यह काली, छेद 'छोह' को रक्त 'अर्घ्य' में ले कङ्काली।
लाल 'लोभ' का रक्त 'आचमन' में ले, माता, 'मद' का मद हूँ काढ़, तुझे 'सु-स्नान' कराता ।।

'मत्सर' की यह चाम 'वस्त्र' धारण कर कटि में, 'घृणा' पाश की चाम और ले उत्तर-पट में।
यह 'लज्जा' की चाम 'कंचुकी' लो माँ अर्पित, माँ, यह 'भय' की मेद 'अङ्ग-रागार्थ' समर्पित ।।

'शङ्का' की यह मेद जटा में तेरे डालो, और 'जुगुप्सा' - मेद 'दीप' में मैंने बाली।
'कुल' की मज्जा का यह मादक 'चन्दन' तेरे, 'शील-पाश' मज्जा का 'कुंकुम' लगा सबेरे ।।

'जाति'-पाश मज्जा का यह 'सिन्दूर' लगा ले, 'षड्-रिपुओं' के काढ़ कलेजे सुख से खा ले।
'अष्ट-पाश' का चूस रक्त निज प्यास बुझा ले, शेष बचे तो 'गौरव' में माँ जीभ गड़ा दे ।।

'षड्-रिपुओं' के मुण्ड पिरो 'माला' यह तुझको, पहनाऊँ जो देख हर्ष अति होवे मुझको।
'अष्ट-पाश' की ज्वलित चिता को 'आरति' तेरी, और 'दक्षिणा' मध्य भेंट अद्भुत ले मेरी ।।

'अहङ्कार' को मार, काट कर मुण्ड सजाया, खप्पर में, यह भेंट पुत्र है तुझको लाया।
लेकर के स-स्नेह भेंट, हो जा प्रसन्न, माँ ! अभय-पाणि मम शीश धारि, सो जा प्रसन्न माँ ।।

—श्री ठाकुर मोहनसिंह जी, जयपुर

१ सम्पादकीय : **'अक्ष-माला', वर्ण-माला, मातृका-माला** का महत्त्व १
२ सप्तशती-पाठ की चामत्कारिक विधि : पण्डित कृष्णानन्द मिश्र वैद्य, ककरा दुबावल, प्रयाग ४
३ जिज्ञासु के पत्र : **'उच्छिष्ट-चाण्डालिनी ( सुमुखी देवी )'** की उपासना से सम्बन्धित ४
४ अलौकिक समुद्र-मन्थन और वाम-मार्ग की शक्ति-साधना : 'कुल-रत्न' श्री वीरेन्द्र गिरि ५
५ लद्दाख का 'अज्ञात' शक्ति-पीठ—शिवहरि राणा द्वारा 'चण्डी-कार्यालय, अलोपीबाग, प्रयाग ६
६ **मन्त्र- मातृका-पुष्प-माला स्तोत्र** : श्री शिवचरणलाल महावीरप्रसाद चौरसिया, नागपुर ९
७ अध्यात्म या आध्यात्मिक विज्ञान की सार्थकता : पं० केशरीकुमार मिश्र, नेपालगंज, नेपाल १७
८ मातृ-उपासक के हृदयोद्गार : ब्रह्म-लीन स्वामी शाश्वतानन्द जी सरस्वती २०
९ शक्ति-उपासना के आधार : पण्डित रामकृष्ण पाण्डेय, फैजाबाद, उ० प्र० २१
१० सप्तशती-सम्बन्धी जिज्ञासाएँ २३
११ श्री बाला-त्रिपुर-सुन्दरी स्तोत्र : पण्डित काशीप्रसाद शुक्ल 'वैद्य', अभुआ बाजार, प्रयाग २५
१२ भारत की आर्ष विद्याओं पर भ्रामक साहित्य : पं० गङ्गाशरण शुक्ल, पुराना कटरा, प्रयाग ३०

---

**स-म्पा-द-की-य** : 'वर्ण-माला', 'मातृका-माला' अथवा 'अक्ष-माला' का महत्त्व

किसी भी मन्त्र के जपने के लिए **'वर्ण-माला'** या **'मातृका-माला'** सर्व-श्रेष्ठ है। इसे **'अक्ष-माला'** भी कहते हैं क्योंकि **'अ'** से **'क्ष'** तक के वर्णों को ही अनुलोम-विलोम (सीधा-उलटा) संयोजित करने से यह विशिष्ट माला प्रस्तुत होती है। इस 'माला' की एक विशेषता यह भी है कि इसे प्राप्त करने के लिए कुछ भी धन खर्च नहीं करना पड़ता, केवल स्वयं साधक को इसे सिद्ध करने के लिए अभ्यास करना होता है। अभ्यास भी कोई विशेष श्रम-साध्य नहीं है। एक सप्ताह के ही अभ्यास से यह अनूठी शास्त्र-सम्मत अनुपम 'माला' साधक के हस्तगत हो जाती है।

**'वर्ण-माला'** में जप करने से मन की शक्ति अभीष्ट मन्त्र को अकारादि मातृकाक्षरों से पुटित या सम्पुटित करने में लगानी होती है, जिससे एक अतिरिक्त लाभ यह होता है कि मनोनीत मन्त्र की शुद्धि होकर उसे विशेष उद्बोधन भी प्राप्त होता है। यही कारण है, जिससे 'वर्ण-माला' को सब मालाओं से श्रेष्ठ माना गया है—

'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं'

यही **'वर्ण-माला'** का पूर्वार्ध-रूप है, जिसमें अ-कारादि १६ वर्ण+क-कार से लेकर अंतिम ल-कार तक ३४ वर्ण—कुल ५० वर्ण हैं। 'क्ष-कार सुमेरु' है, जिससे अभीष्ट मन्त्र को पुटित या सम्पुटित नहीं किया जाता। उक्त पचास वर्णों को विलोम (उलटा) रूप में अर्थात् अन्तिम **'ळ-कार'** से 'अ-कार' तक जपने से कुल सौ वर्णों की माला बनती है। अन्त में **'वर्ण-माला'** के आठ वर्गों के आदि अक्षरों— **'अं कं चं टं तं पं यं शं'** का जप करने से १०८ वर्णों की माला प्रस्तुत हो जाती है।

मान लीजिए कि आपको **'शिवाय नमः'** मन्त्र को जपना है, तो **'अं शिवाय नमः, आं शिवाय नमः, इं शिवाय नमः'** इत्यादि क्रम से **'हं शिवाय नमः, ळं शिवाय नमः'** तक जपें। फिर विलोम-क्रम से

अर्थात् 'ळं शिवाय नमः, हं शिवाय नमः, सं शिवाय नमः' इत्यादि क्रम से **'आं शिवाय नमः, अं शिवाय नमः'** तक १०० बार जप कर **'अं शिवाय नमः, कं शिवाय नमः, चं शिवाय नमः'** इत्यदि क्रम से ८ बार जपें। इस प्रकार **'नमः शिवाय'** मन्त्र का एक माला जप सम्पन्न हो जायगा।

## मन्त्र-महोदधिः

('मोहिनी' हिन्दी व्याख्या तथा 'नौका' संस्कृत टीका सहित)

**अनुवादक और व्याख्याकार : पं० शुकदेव चतुर्वेदी**

**'मन्त्र-महोदधि'** भारतीय मन्त्र-शास्त्र का सर्वाधिक प्रामाणिक तथा प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है। इसमें मन्त्र-साधना के सभी आवश्यक अङ्गों का सविस्तार वर्णन करने के पश्चात् प्रायः सभी प्रमुख देवी-देवताओं, अर्ध-देवताओं, पिशाचों, यक्षों, यक्षिणियों तथा षट् - कर्मों के मन्त्रों और साधन-विधियों का आद्योपान्त तथा विस्तृत उल्लेख है।

यह ग्रन्थ लगभग अर्ध-शताब्दी पूर्व अपने मूल रूप में छपा था। हिन्दी-अनुवाद तो इसका कभी हुआ ही नहीं। इस संस्करण में इस ग्रन्थ का मूल तथा उस पर प्राचीन **'नौका-टीका'** सहित विस्तृत **'मोहिनी' - हिन्दी व्याख्या** दी गई है। विद्वान् व्याख्याकार ने ग्रन्थ की सभी जटिलताओं की बिस्तृत व्याख्या की है, साथ ही साधना तथा सांस्कारिक कृत्यों से सम्बद्ध अन्यान्य बातों, मूल-मन्त्रों आदि का भी उल्लेख कर दिया है, जिससे पुस्तक को पढ़ कर सहज ही कोई भी साधना की विधियों से अवगत हो सकता है।

आवश्यक यन्त्रों के चित्र भी दिए गए हैं, जिससे पुस्तक स्वयं में पूर्ण हो गई है। मूल्य २००) रु० है। **'चण्डी' सदस्यों के लिए रियायती मूल्य १६०) रु० है।**

## रुद्र-यामल तन्त्र

तन्त्र-साहित्य में **'यामल'**-तन्त्रों की अपनी विशेषता है। **'यामल'** के आठ लक्षण बताए गए हैं–

सृष्टिश्च ज्योतिषाख्यानं नित्य-कृत्य-प्रदीपनम्।
क्रम-सूत्रं वर्ण - भेदो जाति - भेदस्तथैव च।
युग-धर्मश्च संख्यातो यामलस्याष्ट - लक्षणम्॥

**'वाराही-तन्त्र'** में यामलों के छः प्रकारों का उल्लेख है। यथा–१ **आदि-यामल, २ ब्रह्म-यामल, ३ विष्णु-यामल, ४ रुद्र-यामल, ५ गणेश-यामल** और **६ आदित्य-यामल**। ब्रह्म और विष्णु-यामल के बाद **रुद्र-यामल** का उपदेश होने के कारण रुद्र-यामल को **'उत्तर-तन्त्र'** भी कहा जाता है।

उक्त छः यामलों में से अभी तक केवल **'रुद्र-यामल'** ही प्रकाश में आ सका है। १८९२ ई० में जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य द्वारा प्रकाशित **'रुद्र-यामल'** में केवल ६६ ही पटल छपे थे, जब कि प्रस्तुत **'रुद्रयामल'** में ९० पटल छपे हैं। इस नए संस्करण के सम्पादन में जीवानन्द के संस्करण के अतिरिक्त अन्य तीन हस्त-लिखित प्राचीन पाण्डुलिपियों की सहायता ली गई है। **इससे** यह अधिक प्रामाणिक और विस्तृत रूप में प्रकट हो सका है। संस्कृत में छपा यह संस्करण लगभग एक हजार पृष्ठों का है। हिन्दी-टीका नहीं है। मूल्य १२०) रु०, 'चण्डी' - सदस्यों के लिए मूल्य १०५) रु०।

# सप्तशती-पाठ की चामत्कारिक विधि

[ प्रत्येक अध्याय के पश्चात् हवन या पुष्पाञ्जलि ]

• पण्डित कृष्णानन्द मिश्र वैद्य, ककरा दुबावल, इलाहाबाद (उ० प्र०)

प्रथम अध्याय के पाठ के पूर्व '**ॐ अस्य श्रीसप्तशत्याः**' कहकर '**प्रथम चरित**' के पाठ का सङ्कल्प करे। तब '**रात्रि - सूक्त**'—'**त्वं स्वाहा त्वं स्वधा**' इत्यादि का पाठ करे। उसके बाद '**शक्ति - गायत्री**' का १०८ बार जप करे। यथा--

**ॐ वीज-त्रयाय विद्महे, तत्-प्रधानाय धीमहि, तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्।**

अथवा—**ॐ ऐं ह्रीं क्लीं विद्महे, महा-काली तत्-प्रधानाय धीमहि, तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्।**

लिखा है--'**देवी-सूक्तं विना यस्तु, स्तोत्रं सप्तशतीं जपेत्। मातृ - गामी स विज्ञेयो, नरक-वास-तत्परः॥**' अर्थात् '**रात्रि-सूक्त**' के बाद '**देवी-सूक्त**' का पाठ करे। उसके बाद '**निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः**'—इस षोडशाक्षरी मन्त्र का एक सहस्र जप करे। यह मन्त्र सभी कामनाओं की पूर्ति करता है। इस प्रकार प्रथम अध्याय का पाठ कर चुकने पर निम्न मन्त्रों से हवन करे या पुष्पाञ्जलि दे—

'**साङ्गायै वाग्भव - वीजाधिष्ठात्र्यै महा - काल्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' द्वितीय अध्याय के बाद—'**साङ्गायै लक्ष्मी-वीजाधिष्ठात्र्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' तीसरे अध्याय के पश्चात्—'**साङ्गायै अष्टा-विंशति-वर्णात्मिकायै महा-लक्ष्म्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' चतुर्थ अध्याय के बाद–'**साङ्गायै त्रि-वर्णात्मिकायै त्रि-शक्ति-लक्ष्म्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' पाँचवाँ अध्याय पाठ करने के पश्चात्-- **साङ्गायै विष्णु-मायादि त्रयो - विंशति - देवताभ्यो महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' छठे अध्याय के बाद– '**साङ्गायै शताक्ष्यै धूमाक्ष्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' सातवें अध्याय के पश्चात्—**साङ्गायै कर्पूर - वीजाधिष्ठात्र्यै चामुण्डा - देव्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' आठवें अध्याय के पश्चात्—'**साङ्गायै अष्ट-मातृ-सहितायै रक्ताक्ष्यै देव्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' नवम अध्याय के बाद--'**साङ्गायै भैरव्यै तारा-देव्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' दशम अध्याय के पश्चात्- '**साङ्गायै सिंहासनायै त्रिशूल - पाश - धारिण्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' एकादश अध्याय के पश्चात् –'**साङ्गायै सर्व - नारायण्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' बारहवें अध्याय के पश्चात्--'**साङ्गायै बाला-त्रिपुर-सुन्दर्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।**' तेरहवें अध्याय के पश्चात्--पूर्णाहुति देकर विसर्जन करें।

उक्त प्रकार एक महीने तक निरन्तर पाठ करने से चामत्कारिक फल प्राप्त होता है। यह विधान एक प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तक के आधार पर 'चण्डी' के पाठकों के हितार्थ प्रस्तुत है। इस विधान के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न भी उठते हैं। यथा— ( शेष पृष्ठ ४ पर )

पं० रामकिशोर त्रिपाठी (उ० प्र०) अपने पत्र दिनाङ्क ३-११-९१ में लिखते हैं :

**प्रश्न :** 'शाक्त-धर्म - विशेषाङ्क', पृष्ठ १७१ पर 'उच्छिष्ट-चाण्डालिनी (सुमुखी देवी )' और 'मन्त्र-कोष', पृष्ठ ६, क्रमाङ्क ११ पर बताया है कि 'नवाक्षर मन्त्र' का जप उच्छिष्ट - मुख से करना चाहिए। क्या इन्हें नैवेद्य भी 'उच्छिष्ट' ही चढ़ाना होगा और इनका हवन भी क्या 'उच्छिष्ट' द्रव्य से ही करना होगा ?

मैं वैष्णव पद्धति द्वारा 'नवार्ण मन्त्र' से दीक्षित हूँ। क्या मैं उक्त मन्त्रों का पुरश्चरण कर सकता हूँ ?···पूजा में देवी गायत्री का कहाँ और कब उपयोग होता है और इसकी क्या आवश्यकता है ?

**उत्तर :** त्रिपाठी जी, आप दीक्षित हैं अर्थात् आपके गुरुदेव होंगे। आपको उन्हीं से जिज्ञासा करनी चाहिए और जैसा वे निर्देश दें, वैसा ही आपको करना चाहिए। देवी गायत्री के मन्त्र के जप से 'द्विजत्व' प्राप्त होता है। 'द्विजत्व' की प्राप्ति होने पर ही कोई व्यक्ति देव-पूजा करने का अधिकारी बनता है। अतः पुरश्चरण-कर्ता को सन्ध्या-काल में सन्ध्योपासन के समय देवी गायत्री की उपासना करना आवश्यक है। तन्त्रोक्त 'नित्यार्चन' में यथा-स्थान 'वैदिक' एवं 'तान्त्रिक'—दोनों प्रकार की गायत्री जपने का विधान है, जो सभी पद्धतियों में प्रकाशित है।

( पृष्ठ ३ का शेषांश )

(१) तीनों चरितों का सङ्कल्प अलग-अलग होगा या प्रत्येक अध्याय के सङ्कल्प करने होंगे ?

(२) प्रत्येक चरित के पूर्व सङ्कल्प के पश्चात् क्या क्रमशः 'रात्रि-सूक्त' और 'देवी-सूक्त' का पाठ कर 'शक्ति-गायत्री' का १०८ बार जप करना होगा ? अथवा 'चरित - पाठ' के पूर्व 'रात्रि - सूक्त' और पश्चात् 'देवी-सूक्त' का ?

(३) शक्ति-गायत्री के जप में 'तत्-प्रधानाय' के स्थान पर क्या त्रि-चरित-नायिकाओं—'श्रीमहा-काली, श्रीमहा-लक्ष्मी, श्रीमहा-सरस्वती' के नाम रखने चाहिए ?

(४) षोडशाक्षरी मन्त्र का जप कब किया जाएगा ?

(५) तेरहवें अध्याय के पश्चात् किसी 'मन्त्र' का निर्देश नहीं है। क्या वहाँ निम्न मन्त्र का उपयोग कर सकते हैं—

**'साङ्गायै जगद्-धात्र्यै श्रीचण्डिका-देव्यै महाऽऽहुतिं समर्पयामि नमः स्वाहा।'**

उक्त प्रश्नों पर अनुभवी प्राचार्य गुरुओं को विचार कर अपना निर्णय देना उचित है।

प्रस्तोता : पं० सतीशचन्द्र उपाध्याय, दलापुर, प्रयाग

# अलौकिक समुद्र-मन्थन

**'कुल-रत्न' श्री वीरेन्द्र गिरि**

भारत में लोक-प्रिय असंख्य पौराणिक गाथाओं में एक कथा सर्व-विदित है कि देवता जब श्री-हीन हो गए थे, तब उन्होंने असुरों के साथ मिलकर '**समुद्र - मन्थन**' किया था, जिसके फल - स्वरूप उन्हें चौदह विलक्षण **रत्नों** की प्राप्ति हुई थी। ये चौदह रत्न थे—१ लक्ष्मी, २ कौस्तुभ मणि, ३ पारिजात, ४ सुरा, ५ धन्वन्तरि, ६ चन्द्रमा, ७ कामधेनु, ८ ऐरावत हाथी, ९ रम्भा, १० उच्चैःश्रवा घोड़ा, ११ विष, १२ धनुष, १३ शङ्ख और १४ अमृत। इस सम्बन्ध में निम्न **मङ्गलाष्टक** स्मरणीय है—

**लक्ष्मीः कौस्तुभ- पारिजातक - सुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा,**
**गावः काम-दुघाः सुरेश्वर-गजो रम्भादि-देवाङ्गनाः।**
**अश्वः सप्त-मुखो विषं हरि - धनुः शङ्खोऽमृतं चाम्बुधे,**
**रत्नानीह चतुर्दश प्रति-दिनं कुर्युः सदा मङ्गलम्॥**

उक्त १४ रत्नों की प्राप्ति से ही देवताओं की श्री-वृद्धि हुई थी और वे शक्ति-सम्पन्न हुए थे। क्या यह **समुद्र-मन्थन** एक अलौकिक 'शक्ति-साधना' ही नहीं है?

वस्तुतः हमारा **विश्व** एक 'क्षीर-सागर' है। 'संसार' को सागर या समुद्र कहते भी हैं। इस 'विश्व' में हलाहल 'विष' भी है और 'अमृत' भी। **प्रवृत्ति** और **निवृत्ति** इस सागर को मथनेवाली **मथानी** के दो छोर हैं। **मन्दराचल** है मानव की **दृढ़ता**। सङ्कल्प-शक्ति **मथानी** है और **कूर्म-पीठ** है--सुखद परिणाम की अलौकिक **आधार-शक्ति**। इस **विश्व-मन्थन** में नित्य-नैमित्तिक कर्म ही **दानवी** और **दैवी** उपलब्धियों के प्रतीक हैं। **शेष-नाग का फन** क्रिया की **प्रतिक्रिया** है। जब मनुष्य की 'सङ्कल्प - शक्ति' जोर लगाती है, तब समग्र विश्व में एक आलोड़न - सा मच जाता है और काल - गति में ज्वार उठ खड़ा होता है।

मानव की तपस्या, तितिक्षा और त्याग के मिश्रण से विश्व-रूपी **क्षीर - सागर** का मन्थन होने लगता है और सर्व-प्रथम उत्पन्न होता है--**हलाहल** अर्थात् मार्ग में उठ खड़ी होती हुई विविध बाधाएँ। इन बाधाओं को कोई और दूर नहीं करता, अपितु स्वयं मानव को ही अपने '**शिवत्व**'-भाव के द्वारा उसे ग्रहण करना होता है। जो मानव इस **विष-पान** को पचा जाता है, वही आनन्द-दायक उक्त **चौदह रत्नों** की प्राप्ति का अधिकारी होता है।

भक्ति-आराधना में **समुद्र-मन्थन** की कथा का बड़ा महत्त्व है और यह महत्त्व तब और अधिक हो जाता है, जब **वाम-साधना** करनी पड़ती है। दुष्प्रवृत्तियों का प्रयोग भी इष्ट-साधना के लिए **शेष-नाग** के **विष-ज्वाल** में तपाकर करना होता है। तथा--**शाम्भव** बनकर अपने ही कर्मों से उत्पन्न **विष** का पान भी करना होता है। यही **वाम-मार्ग** की **शक्ति-साधना** है। जो लोग इस रहस्य को नहीं जान पाते और अतिशय विषयोपभोग के आखेट बन जाते हैं, वे ही **सिद्धि** और **मोक्ष** से च्युत होते हैं। यह **शक्ति-साधना** बतलाती है कि पहले **शिव**, तब **विष्णु** बनना होता है और अन्त में **जगन्नियन्ता**।

**वाम-मार्ग** की साधना-पद्धति अति सुन्दर, सहज और वैज्ञानिक पद्धति है। लोग पूर्व - ग्रह और रूढ़ि-गत संस्कार-वश इसे अपनाने से हिचकते हैं, परन्तु यही पद्धति **सत्** और **असत्** का निरूपण करवा



( शेष पृष्ठ ८ पर )

# लद्दाख का 'अज्ञात' शक्ति-पीठ

मेरा रुझान **'देवी-उपासना'** की ओर बचपन से ही रहा है और गुरु - कृपा से इस ओर अग्रसर भी हुआ। इसी बीच **'शक्ति-पीठों'** के बारे में 'चण्डी' पत्रिका से कुछ जानकारी प्राप्त हुई कि **'शक्ति-पीठ'** क्या हैं। यह बात लगभग सन् १९८८-८९ की है। इस वर्ष जनवरी के महीने में बाजार में बिक रहे **'पञ्चाङ्ग-कैलेण्डरों'** में से एक—'प्रयाग-पञ्चाङ्ग' मैंने खरीदा, जो १५ कटघर से प्रकाशित होता है। इन **'पञ्चाङ्ग'** कैलेण्डरों की विशेषता यह रहती है कि प्रत्येक मास के पिछले पृष्ठ में धर्म-कर्म-विषयक बहुत सारी जानकारी दी जाती है।

उक्त 'प्रयाग-पञ्चाङ्ग' के एक पीछे के पृष्ठ में **'शक्ति-पीठ'** की विशेषता का उल्लेख करते हुए ५१ शक्ति-पीठों का वर्णन सुन्दर ढँग से किया गया है कि ये **'शक्ति-पीठ'** कहाँ-कहाँ हैं। पढ़ते-पढ़ते मेरा ध्यान 'लद्दाख' में स्थित **'कोट'** पीठ पर आकर रुक गया। कारण यह था कि मैं इन दिनों **'लद्दाख'** में ही कार्य-रत हूँ और जब मैं पहली बार पिछले वर्ष वहाँ पहुँचा था, तो किसी ने मुझे बताया कि **'लेह'** में एक **'देवी-मन्दिर'** है। है तो वह बौद्धों का, लेकिन वे भी इसे 'देवी-मन्दिर' ही कह कर जानते हैं और इसकी यहाँ काफी मान्यता भी है।

मैं भी उक्त **'देवी-मन्दिर'** को देखने गया। देखा कि वहाँ एक बड़ा-सा नोटिस बोर्ड लगा है। उसमें जो कुछ पढ़ा, उसका सार यह है कि **'यह मन्दिर बौद्धों का है और यहाँ केवल बौद्ध-धर्मानुसार ही पूजा की जा सकती है। हिन्दू-पद्धति द्वारा पूजन करना वर्जित है।'** उस दिन तो मैं केवल इतना ही देखकर वापस आ गया, किन्तु जब मैंने **'लद्दाख'** में स्थित **'शक्ति-पीठ'** का वर्णन पढ़ा, तो मेरे हृदय में यह बात उठी कि क्या यह वही **'शक्ति-पीठ'** है ? इस बात का समाधान अब तक नहीं हो पाया है।

अब मैं थोड़ा विस्तार से उक्त **'देवी-मन्दिर'** का परिचय यहाँ दे रहा हूँ। यह मन्दिर 'लेह'-स्थित हवाई अड्डे के **'रन वे'** के पश्चिमी छोर पर एक छोटी-सी टेकरी के ऊपर स्थित है। यह मन्दिर वहाँ अकेला ही है। यहाँ के पुजारी-रूप में एक **'बौद्ध लामा'** की ही अलग से नियुक्ति की गई है, जो अपनी पूजा इस मन्दिर में करता है।

इस मन्दिर में प्रवेश करते ही उक्त 'नोटिस-बोर्ड' मिलता है। देखने में तो यह 'मन्दिर' एक छोटा-सा घर दिखाई देता है और अन्दर सामान्य बौद्ध-मन्दिरों की ही तरह है, जिन्हें बौद्ध लोग **'गुम्बा'** कहते हैं। मन्दिर में **'देवी'** की एक बहुत बड़ी मूर्ति है, जिसे ढँक कर रखा गया है। उसका दर्शन किसी को करने नहीं दिया जाता। कहा जाता है कि उस आवरण को वर्ष में केवल एक ही बार जनवरी या फरवरी के महीने में हटाया जाता है। यह अवश्य है कि **'देवी'** के दर्शन के लिए अपार भीड़ रहती है और यहाँ मेला भी लगता है, किन्तु दुर्भाग्य से मैं **'देवी'** के दर्शन नहीं कर पाया।

**'देवी की मूर्ति'** के दाहिनी ओर एक दूसरा कमरा-सा है और वहाँ भी एक विशाल-काय मूर्ति है, जिसे वे **'काल-भैरव'** की मूर्ति बताते हैं। आस-पास बहुत-सी छोटी-बड़ी मूर्तियाँ भी रखी हैं, जो बौद्ध गुरुओं की हैं। **'देवी-मन्दिर'** की टेकरी के ऊपर लगभग २०० मीटर की दूरी पर बौद्धों का एक बड़ा **'गुम्बा'** भी स्थित है, जहाँ वे अपने देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। इस स्थान में भी एक कमरा है, जहाँ भगवती तारा की बहुत-सी मूर्तियाँ रखी हैं। कहा जाता है कि **'लद्दाख'** के राजा ने हजारों वर्ष

पूर्व 'महा-देवी तारा' को कुछ मूर्तियों को तिब्बत से लाकर यहाँ रखा था। यह स्थान एक 'गुरु - कुल' के समान है, जहाँ बालकों और नव - युवकों को, जो 'बौद्ध - लामा' बनना चाहते हैं, शिक्षा दी जाती है।

भाषा की कठिनाई के कारण यह सम्भव नहीं था कि कुछ और पूछ-ताछ की जाय क्योंकि यहाँ मूलतः 'लद्दाखी' भाषा में ही बोलते हैं और कुछ तिब्बती भाषा में। हाँ, नीचे के मन्दिर में पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण विभाग के नोटिस-बोर्ड के अनुसार लगभग १४०० वर्ष पूर्व तिब्बत में किसी बड़े 'लामा' (गुरु) ने यह स्वप्न देखा था कि **'लेह के पास एक पहाड़ी के ऊपर एक मन्दिर खंडहरों में पड़ा हुआ है, उसका जीर्णोद्धार करो।'** इस स्वप्न के बाद उन 'लामा' ने अपने दो शिष्यों को लम्बी और कठिन यात्रा कर 'लेह' जाने और मन्दिर का जीर्णोद्धार करने का कार्य-भार सौंपा। तभी यह 'मन्दिर' बना और तब से अब तक यह 'मन्दिर' ऐसा ही चल रहा है।

अब कहना यह है कि 'बौद्ध-धर्म' वस्तुतः 'हिन्दू - धर्म' से ही बना है। तिब्बत का बौद्ध-धर्म का इतिहास बताता है कि बौद्ध-धर्म को सीखने के लिए तिब्बत के राजा ने भारतवर्ष के 'नालन्दा-विश्व-विद्यालय' से गुरुओं को बुलाया था और उनमें से एक गुरु ने ही 'बौद्ध - धर्म' की सारी रचनाएँ तिब्बती भाषा में लिखीं, जो आज भी प्रचलित हैं। इसी से बौद्ध लोग प्रायः उन सभी देवी - देवताओं की पूजा करते हैं, जिनकी पूजा हिन्दू करते हैं। अन्तर है, तो केवल पूजा की विधि में। बौद्ध-धर्म इसलिए भिन्न है कि यह किसी प्राणी को मारने की आज्ञा नहीं देता, किन्तु 'पञ्च - मकारों' के मांस - भक्षणादि में कोई रोक नहीं है। हाँ, बौद्धों के एक वर्ग में अवश्य ब्रह्मचर्य-पालन अनिवार्य माना जाता है।

यदि उक्त तथ्य सही है, तो क्या यह सम्भव नहीं कि स्वप्न में लामा जी को जिस मन्दिर का ज्ञान प्राप्त हुआ, वह वही 'शक्ति-पीठ' ही हो, जिसका जीर्णोद्धार करना था। समय और स्थिति के कारण आज वह 'पीठ' बौद्धों के हाथ लग कर बौद्धों का 'लुम्बा' नामक मन्दिर बन गया हो!

इस लेख से मेरा यह आशय कदापि नहीं है कि अब इस 'शक्ति-पीठ' को (यदि यह शक्ति-पीठ है, तो) बौद्धों के कब्जे से छुटकारा दिलाना है। नहीं, बिल्कुल नहीं। मेरा आशय केवल इतना है कि जो 'शक्ति-पीठ' समय के अतीत में खो-सा गया है, उसे फिर से सामने लाना है और अभिलाषी व्यक्ति, जो इसका दर्शन करना चाहें, बिना किसी बाधा के इसका दर्शन - पूजन कर सकें। मेरी समझ से बौद्ध लामाओं को इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

'चण्डी' के द्वारा सभी देवी-उपासकों और भक्तों से मेरा अनुरोध है कि यदि कोई भी बन्धु उक्त 'शक्ति-पीठ' के सम्बन्ध में कुछ और जानकारी दे सकें, तो 'चण्डी' में प्रकाशित कराने की कृपा करें, जिससे उसके आधार पर इस सम्बन्ध में मैं कुछ और प्रयास कर सकूँ। इससे अज्ञात तथ्यों की खोज-बीन हो सकेगी और एक लुप्त-प्राय 'शक्ति-पीठ' पुनः उजागर हो सकेगा। 'लद्दाख' के इस क्षेत्र में मैं लगभग एक वर्ष और रहूँगा और इस अनुसन्धान में यदि मैं कुछ कर सका, तो अपने आपको भाग्य-शाली समझूँगा।

यदि कोई भक्त बन्धु उक्त 'शक्ति-पीठ' को स्वयं देखना चाहें, तो उनकी सुविधा के लिए 'लेह' पहुँचने के मार्ग एवं साधन आदि का विवरण यहाँ प्रस्तुत है--

**(क) हवाई जहाज द्वारा**—(१) दिल्ली से लेह—१ घण्टा, १५ मिनट, (२) चण्डीगढ़ से लेह—५० मिनट, (३) जम्मू से लेह--४५ मिनट।

**(ख) रेल-द्वारा**--रेल द्वारा दिल्ली से चण्डीगढ़ या जम्मू तक ही जा सकते हैं। उसके आगे या तो हवाई जहाज लेना होगा या बस (मोटर) द्वारा जाना होगा।

**(ग) बस (मोटर) द्वारा**--(१) जम्मू से बस पहले 'श्रीनगर', फिर 'लेह' तक पहुँचाएगी। इसमें ३ या चार दिन लगेंगे। (२) चण्डीगढ़ से बस पहले 'मनाली', फिर 'लेह' पहुँचाएगी। इसमें ३ या ४ दिन लगेंगे।

**'लेह'** में ठहरने के लिए बहुत से होटल हैं। यह नगर मैदानी क्षेत्र से बहुत दूर होने के कारण काफी मँहगा है। यहाँ हिन्दुओं की एक धर्मशाला भी है। **'लेह'** लगभग ११,००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है। इसलिए गर्म कपड़ों की आवश्यकता सदैव रहती है। यहाँ आने का सबसे अच्छा समय **'जून'** से **'सितम्बर'** तक है। अक्टूबर से मई-जून तक **'जोजिला'** और **'रोहताङ्ग'** दर्रे बन्द रहने के कारण बसें (मोटरें) नहीं चलतीं और आने-जाने का साधन केवल एक ही रह जाता है। वह है—हवाई जहाज।

**द्वारा 'चण्डी'-कार्यालय** • • **—शिव हरि राणा, प्रयाग**

---

(पृष्ठ ६ का शेषांश)

पाती है। यह एक अति विकसित वैज्ञानिक **सामाजिक** पद्धति भी है, जो **अस्पृश्यता** के भाव का उन्मूलन कर देती है। साथ ही यह उच्चकोटि की वैचारिक **साम्य-वादी** उपासना-पद्धति भी है। इस पद्धति द्वारा समाज में निम्न-तर समझी जानेवाली वस्तुओं को संस्कारित कर उनसे इसी **कलियुगी** जीवन में उच्चतम **सिद्धि —मोक्ष** की प्राप्ति की जा सकती है। इसीलिए तो यह **मार्ग** घोषित करता है—

**'सर्वे शाक्ताः द्विजा प्रोक्ता···'**

**वाम-मार्ग** के प्रख्यात **भैरवी-चक्र** में उपस्थित शूद्र को भी **द्विजत्व** की प्राप्ति होती है।

अतएव सभी मनुष्यों के लिए **शक्ति-साधना** का **वाम-मार्ग** ही श्रेयस्कर है क्योंकि यही **सार्वकालिक** और **सार्व-देशिक** है। इसमें पर - अपर, स्पृश्य - अस्पृश्य, ग्राह्य - अग्राह्य आदि में कोई भेद नहीं किया जाता, अपितु उनमें परस्पर समन्वय स्थापित करके उसे **मोक्ष का साधन** बना लिया जाता है।

अध्यक्ष, 'बिहार शाक्त सम्मेलन' • कङ्कड़बाग, पटना (बिहार)

---


# आपद्धुद्धारक
# सविधिश्रीबटुक-भैरव-स्तोत्र

**मूल्य पाँच रुपए**

भगवान् श्री शङ्कराचार्य विरचित

# मन्त्र-मातृका-पुष्पमाला-स्तोत्र

## ( भगवती त्रिपुर-सुन्दरी की मानस पूजा )

* श्री शिवचरणलाल महावीरप्रसाद चौरसिया, नागपुर (महा-राष्ट्र)

इस संसार में ईश्वर की पूजा के दो प्रकार हैं—१ बाह्योपचार - विधि से की जानेवाली 'बाह्य-पूजा' तथा २ मानसोपचार-विधि से की जानेवाली 'मानसिक पूजा'। तात्त्विक दृष्टि से बाह्योपचार-पूजा की अपेक्षा मानसोपचार-पूजा को श्रेष्ठ माना गया है।

संसार में सुख की प्राप्ति के लिए मानव सदा प्रयत्न करता रहता है। वह दुःख भोगने की इच्छा कभी नहीं करता, लेकिन इस मायावी संसार में, मनुष्य एवं अन्य जीव प्राणियों को किसी-न-किसी रूप में दुःख भोगना ही पड़ता है। ऐसे समय में हो हम सब माँ का स्मरण करते हैं। हमारी गर्भ-धारिणी माँ हमारे त्रि-तापों—१ **आधि-दैविक** अर्थात् शरीर, इन्द्रिय तथा अन्तः-करण के कष्ट, २ **आधि-भौतिक** अर्थात् अनावृष्टि, अति-वृष्टि, भूकम्प, वज्र-पात और अकाल इत्यादि के प्रकोप से होनेवाले कष्ट, ३ **आधि-भौतिक** अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग इत्यादि प्राणियों से होनेवाले कष्ट—इन त्रि-तापों के कष्टों को दूर करने में असमर्थ रहती है। श्रीमाता ललिता महा-त्रिपुर - सुन्दरी हैं। वे इन त्रि-तापों को दूर करने में सर्व-समर्थ हैं, अतः उपर्युक्त समस्त दुःखों को सदा - सर्वदा के लिए समाप्त करने, मानसिक परम शान्ति और वैभव-शाली सुख की प्राप्ति के लिए—भगवती की पूजा करना परम आवश्यक है।

मनुष्य के समस्त दुःखों की जब तक पूर्ण रूप से समाप्ति नहीं होती, तब तक उसे मानसिक परम शान्ति और वैभव-शाली सुख की प्राप्ति नहीं होती। 'दुःख' अज्ञान का जन्म-दाता है। 'अभि-निवेश' - मृत्यु के भय से उत्पन्न होनेवाले कष्ट का भी जन्म-दाता है। जब तक मनुष्य की अज्ञानता का नाश नहीं होता, तब तक उसके कष्टों का भी नाश नहीं होता। 'तत्त्व-ज्ञान' प्राप्त करने पर ही उनका नाश होता है। 'तत्त्व-ज्ञान' की प्राप्ति के लिए, मन को एकाग्रता और दृढ़ सङ्कल्प की नितान्त आवश्यकता है। मन की एकाग्रता के लिए धर्म-शास्त्रों में अनेक उपाय बताए गए हैं। उन समस्त उपायों में 'भक्ति-मार्ग' का अनुसरण सर्व-श्रेष्ठ माना गया है। 'भक्ति-मार्ग' अत्यन्त सरल तथा मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

इष्ट-देव की पूजा 'भक्ति' का एक महत्त्व-पूर्ण अङ्ग है। 'बाह्योपचार' और 'मानसोपचार'—इन दोनों मार्गों में से किसी भी मार्ग से चलने पर, मनुष्य अपने 'इष्ट - देवता' के चरण-कमलों तक पहुँच जाता है। 'बाह्योपचार-विधि' से की जानेवाली पूजा में समस्त 'पूजन-सामग्री' एकत्रित करने के लिए, अनेक कष्टों को सहन करना पड़ता है और उन सामग्रियों को खरीदने के लिए धन भी खर्च होता है। फलतः 'बाह्योपचार-विधि' के अन्तर्गत मनुष्य का मन उसके 'इष्ट-देवता' में पूर्ण-रूप से लीन नहीं हो पाता क्योंकि उसका सम्पूर्ण ध्यान 'पूजन-सामग्री' को खरीदने और एकत्रित करने में लगा रहता है। उसके मुख से बार-बार यही उच्चारित होता रहता है कि भगवान् के लिए चन्दन तैयार करो, पुष्प-माला लाओ, नैवेद्य लाओ इत्यादि-इत्यादि। इस प्रकार प्रत्येक पूजन-सामग्री के साथ, वह अपने 'इष्ट-

देवता' का नाम लेता है, जिससे उसकी इन्द्रियों में एक प्रकार की स्फूर्ति आ जाती है। उसकी समस्त इन्द्रियाँ 'इष्ट - देवता' की पूजा को पूर्ण करने में व्यस्त हो जाती हैं। इतना सब कुछ करते रहने से, उसका मन बाह्य-विषय से छुटकारा प्राप्त कर लेता है, लेकिन उसका मन–'एकाग्र' नहीं हो पाता। मन और इन्द्रियों के अन्तर्मुख न होने के कारण, उसका मन 'इष्ट-देवता' की पूजा मे किसी प्रकार की कमी तो नहीं रह गई है, इसी ओर लगा रहता है। इसी उलझन में उसे उसके 'इष्ट-देवता' के मूल तत्त्व का बोध और साक्षात्कार नहीं हो पाता।

इसके विपरीत 'मानसोपचार-विधि' से की जानेवाली पूजा अत्यन्त सरल और सु-साध्य है। 'मानस-पूजा' में पूजा करनेवाला एक ओर अपने मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार को 'विषय-वासना' से हटाता है, तो दूसरी ओर पूर्ण श्रद्धा के साथ–विशुद्ध भावना - मयी क्रियाओं द्वारा एक-मात्र सत्य, प्रकाश-मय अपने 'इष्ट-देव' का स्मरण करता है, जिससे देह, प्राण, मन और बुद्धि आदि की बाधाएँ क्रमशः दूर हो जाती हैं और अन्त में 'इष्ट-देव' आविर्भूत हो जाते हैं। 'मानसोपचार-विधि' की पूजा के लिए धन, समय और पूजन-सामग्री की आवश्यकता नहीं रहती। इसमें 'पूजन-सामग्री' की कल्पना करते हुए, 'इष्ट-देवता' के चरण-कमलों में पूर्ण समर्पण करना पड़ता है। अतः 'मानसिक पूजा' में मनुष्य अपने मन को स्थिर कर 'इष्ट-देवता' के चरणों में एकाग्र होकर सफलता का अनुभव करता है। वास्तव में 'मानसिक पूजा' ही सच्ची पूजा है।

'मानसोपचार-विधि' से की जानेवाली पूजा का महत्त्व और इसके अभिप्राय को ध्यान में रख-कर ही श्रीमदाद्य-शङ्कराचार्य जी ने अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड-नायिका षोडशी परा-भट्टारिका राज-राजेश्वरी ललिता महा-त्रिपुर-सुन्दरी की 'मानसोपचार - पूजा - विधि' की रचना की है। उन्होंने भक्तों की सुविधा एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए **'मन्त्र-मातृका-पुष्प-माला स्तोत्र'** की रचना कर भक्तों का कल्याण किया है। यह **'मन्त्र-मातृका-पुष्प-माला स्तोत्र'** सुन्दर, सरल और कर्ण-प्रिय १७ श्लोकों का संग्रह है। जो भक्त भगवती ललिता महा-त्रिपुर-सुन्दरी का, अपने अन्तः - करण में, ध्यान करते हुए इन श्लोकों का, अर्थ और भाव समझते हुए, नित्य और नियमित रूप से पाठ करता है, उसके मन को परम शान्ति और सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है। इस स्तोत्र में अनेक रहस्य समाए हुए हैं। 'श्री विद्या' (पञ्च-दशाक्षरी) के मन्त्राक्षर पुष्प के समान हैं, उन्हीं १७ पुष्पों की माला-रूप यह स्तोत्र है। इसका पाठ और मनन करते समय श्री ललिता महा-त्रिपुर-सुन्दरी के सगुण स्वरूप का चिन्तन, ध्यान करते हुए उन्हें वाहनादि के सहित अपने हृदय पर विराजमान कर मानसोपचारों से उनकी पूजा करें।

कल्लोलोल्लसिताऽमृताब्धि - लहरी - मध्ये विराजन् मणि–
द्वीपे कल्पक - वाटिका - परिवृते कदम्ब - वाट्युज्ज्वले।
रत्न - स्तम्भ - सहस्र - निर्मित - सभा - मध्ये विमानोत्तमे,
चिन्ता - रत्न - विनिर्मितं जननि ! ते सिंहासनं भावये ॥१

हे माता त्रिपुर-सुन्दरि ! समुद्र के पृष्ठ-भाग पर लहराती हुई असंख्य लहरों से सुशोभित क्षीर-सागर की लहरों के समूह के मध्य में कल्प-वृक्षों के उपवनों और कदम्ब-वृक्षों की वाटिकाओं से उज्ज्वल अत्यन्त उत्तम मणि-द्वीप में रत्नों से परिपूर्ण भू-प्रदेश पर एक विशाल सभा-मण्डप है। यह सभा - मण्डप विविध प्रकार के रत्नों से सुशोभित है। इसके खम्भे नाना प्रकार के रत्नों से जड़े हैं। सभा - मण्डप के

मध्य में एक सुन्दर विमान है। उस विमान में आकर्षक चिन्तामणियों से निर्मित एक सिंहासन है, जिस पर अनन्त-कोटि - ब्रह्माण्ड - नायिका षोडशी परा - भट्टारिका ललिता महा - त्रिपुर - सुन्दरी मुस्कुराती हुई विराजमान हैं। हे माता ! मैंने अपने हृदय-पटल पर उक्त सिंहासन आपके बैठने के लिए रखा है। आप मुझ पर कृपा कर प्रसन्नता-पूर्वक इस सिंहासन पर विराजें।

एणाङ्कानल - भानु - मण्डल - लसच्छ्रीचन्द्र - मध्ये स्थिताम्,
बालार्क - द्युति - भासुरां कर - तलैः पाशांकुशौ विभ्रतीम्,
चापं बाणमपि प्रसन्न - वदनां कौसुम्भ - वस्त्रान्विताम्,
तां त्वां चन्द्र - कलावतंस - मुकुटां चारु - स्मितां भावये ॥२

इस श्लोक में **'एण'** शब्द का अर्थ है--'हरिण'। चन्द्रमा के एक भाग में हरिण का चिह्न विराजमान है। इसलिए चन्द्र को **'एणाङ्क'** कहा गया है। इसी से चन्द्र के अन्य नाम हैं मृगाङ्क और हरिणाङ्क। हे श्रीमाता त्रिपुर-सुन्दरि ! **'श्रीयन्त्र'** आपका स्थायी निवास-स्थान है। इसलिए वह 'चन्द्र-मण्डल' के समान शोभित है। वह 'अग्नि-मण्डल' के समान देदीप्यमान है और 'सूर्य-मण्डल' क समान तेजस्वी है। उस देदीप्यमान सुन्दर **'श्रीयन्त्र'** में आप विराजमान हैं। आपकी अङ्ग-कान्ति प्रातःकाल में उदय होनेवाले सूर्य की कान्ति के समान समुज्ज्वल है। आपने अपने चारों कर-कमलों में पाश, अंकुश, धनुष और वाण धारण किए हैं। आपके मुख-कमल पर मुस्कुराहट है। आपने केशरी रङ्ग के वस्त्र धारण किए हैं। आपने जो मुकुट धारण किया है, उसके एक छोर पर चन्द्रमा की कोर झलक रही है। आपके मुख-कमल की मोहिनी मुस्कुराहट सबके मन को मुग्ध कर रही है। आपके इस मङ्गल-मय स्वरूप का मैं अपने अन्तःकरण में चिन्तन करता हूँ।

ईशानादि - पदं शिवैक - फलदं रत्नासनं ते शुभम्,
पाद्यं कुंकुम - चन्दनादि - भरितैरर्घ्यं स - रत्नाक्षतैः,
शुद्धैराचमनीयकं तव जलैर्भक्त्या मया कल्पितम्,
कारुण्यामृत - वारिधे ! तदखिलं सन्तुष्टये कल्पताम् ॥३

हे जगज्जननि ! **'ईशानादि'** अर्थात् शिव-पद, विष्णु-पद और ब्रह्म-पद को धारण कर कल्याण करना ही आपका मुख्य लक्ष्य है और अपने भक्तों को उत्तम फल प्रदान करती हैं। आपके इस पद के लिए मङ्गल-मय रत्न-जटित आसन प्रस्तुत है। केशर, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों तथा रत्न के समान अक्षत जल में मिलाकर रखा है। आपके चरण-कमलों और हाथों को धोने के लिए एक पात्र में जल अर्पित करता हूँ। उसी प्रकार आपके आचमन के लिए भक्ति - भाव से एक पात्र में शुद्ध जल आपके सामने प्रस्तुत है। हे माँ ! आप दया-रूपी अमृत की सागर हैं। मेरे द्वारा सन्तुष्ट हों। भक्ति-भावना-युक्त अन्तःकरण से एकत्र उक्त वस्तुओं को आप प्रसन्नता - पूर्वक ग्रहण करें और इन सभी उपचारों से सन्तुष्ट हों।

लक्ष्ये योगि - जनस्य रक्षित - जगज्जाले विशालेक्षणे,
प्रालेयाम्बु - पटीर - कुंकुम - लसत् - कर्पूर - मिश्रोदकैः।

गो-क्षीरैरपि नारिकेल - सलिलैः शुद्धोदकैर्मन्त्रितैः,
स्नानं देवि ! धिया मयैतदखिलं सन्तुष्टये कल्पताम् ॥४

हे जगन्मातः ! संसार में जितने भी योगी-जन हैं, वे अपने कठिन योग के द्वारा आपको प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित कर तपस्या करते हैं। आप सम्पूर्ण विश्व का रक्षण कर रही हैं। आपके नेत्र विशाल हैं। मैं भक्ति-युक्त अन्तःकरण से आपको स्नान कराता हूँ। स्नान के लिए मैं हिमालय के हिम-सागर से प्रवाहित होनेवाली गङ्गाजी का निर्मल जल लाया हूँ। उस निर्मल जल में मैंने चन्दन, केशर और शुद्ध कपूर डाला है। स्नान के लिए कामधेनु का दूध भी लाया हूँ; पञ्चामृत और नारियल का शुद्ध जल तथा 'श्री - सूक्त', 'पवमान-सूक्त', 'रुद्राध्याय' आदि मन्त्रों से अभिमन्त्रित शुद्धोदक भी लाया हूँ। हे माँ ! मेरे द्वारा कल्पित इन सब वस्तुओं को प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर आप पूर्ण-रूप से सन्तुष्ट हों।

ह्रींकाराङ्कित - मन्त्र - लक्षित - तनो हेमाचलात् सञ्चितैः,
रत्नैरुज्ज्वलमुत्तरीय - सहितं कौसुम्भ - वर्णांशुकम् ।
मुक्ता - सन्तति - यज्ञ - सूत्रममलं सौवर्ण - तन्तून्द्भवम्,
दत्तं देवि ! धिया मयैतदखिलं सन्तुष्टये कल्पताम् ॥५

हे जगज्जननि ! आपके पञ्च-दशाक्षरी महा-मन्त्र में तीन बार 'ह्रीं' बीजाक्षर का उच्चारण होते रहने से आपका स्वरूप भक्तों के अन्तःकरण में विराजमान रहता है, क्योंकि आप स्वयं मन्त्र-मय हैं। इस मन्त्र-मय मूर्ति को धारण करने के लिए स्वर्ण - मय सुमेरु - पर्वत से रत्नों के समान उज्ज्वल दिखनेवाले केशरी रङ्ग के उत्तम वस्त्र आपके पहनने के लिए प्रस्तुत हैं। साथ ही कल्पना के द्वारा मोतियों की माला और सोने के धागों से बना यज्ञोपवीत भी आपको समर्पित है। हे माँ ! आप प्रसन्नता-पूर्वक मेरे द्वारा कल्पित उक्त वस्तुओं को स्वीकार करें। यह सब मैंने आपको सन्तुष्ट करने के लिए किया है।

हंसैरप्यति - लोभनीय - गमने हारावलीमुज्ज्वलाम्,
हिन्दोल - द्युति - हीर - पूरित - तरे हेमाङ्गदे कङ्कणे ।
मञ्जीरौ मणि - कुण्डले मकुटमप्यर्द्धेन्दु - चूड़ामणिम्,
नासा - मौक्तिकमंगुलीय - कटकौ काञ्चीमपि स्वीकुरु ॥६

हे मातः श्रीत्रिपुर - सुन्दरि ! आपके पाद-चालन की बिधि ऐसी विचित्र है कि हंस भी आपके चलने की पद्धति पर मोहित हैं। हंस के चलने की गति से भी आपकी चलने की गति अति उत्तम है। मैं आपके लिए उत्तम मोतियों की माला लाया हूँ। सोने के कङ्कण और भुज-बन्ध आपके लिए प्रस्तुत हैं। दोनों भुज-बन्धन आभूषणों में बहुत से हीरे जड़े हुए हैं, जिनकी जगमगाहट चारों ओर फैली हुई है। आपके सुन्दर और सुकोमल चरण-कमलों को सुशोभित करने के लिए सुन्दर पायल, बिछिया आदि तथा कानों में धारण करने के लिए रत्न-जटित कुण्डल लाया हूँ। रत्न-जटित मुकुट भी प्रस्तुत है, जिसमें चूड़ामणि के समान चन्द्रमा की कोर सुशोभित है। कानों में धारण करने के लिए मोतियों के अलङ्कार लाया हूँ। अँगुलियों के लिए अँगूठियाँ और कण्डी-तोड़ लाया हूँ। कमर में धारण करने के लिए रत्न-

जटित सोने की करधनी लाया हूँ। माँ ! मेरे द्वारा कल्पित उपर्युक्त आभूषणों को प्रसन्नता - पूर्वक स्वीकार करें।

सर्वाङ्गे घनसार - कुङ्कुम - घन - श्रीगन्ध - पङ्काङ्कितम्,
कस्तूरी - तिलकं च फाल - फलके गोरोचना - पत्रकम्।
गण्डादर्शन - मण्डले नयनयोर्दिव्याञ्जनं तेऽञ्चितम्,
कण्ठाब्जे मृग - नाभि - पङ्कममलं त्वत् - प्रीतये कल्पताम् ॥७

हे श्रीमातः त्रिपुर-सुन्दरि ! कपूर, केशर, चन्दन इत्यादि सुगन्धित द्रव्यों से मैंने आपके सम्पूर्ण अङ्गों में लगाने के लिए उबटन तैयार किया है। इसे आप स्वीकार करें। आपके लिए कस्तूरी लाया हूँ। आप इसका तिलक मस्तक पर लगावें। दर्पण के समान स्वच्छ गो-रोचन लाया हूँ। सुन्दर और सुकोमल कपोलों पर आप इसका प्रयोग करें। सुन्दर अञ्जन लाया हूँ, जिसे कमल-नयनों में लगावें। कमल के समान कोमल और सुन्दर कण्ठ में लगाने के लिए कस्तूरी लाया हूँ। मेरे द्वारा एकत्र इन सभी सामग्रियों को स्वीकार करें और पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हों।

कल्हारोत्पल - मल्लिका - मरुबकैः सौवर्ण - पङ्केरुहैः,
जाती - चम्पक - मालती - बकुलकैर्मन्दार - कुन्दादिभिः।
केतक्या करवीरकैर्बहु - विधैः क्लृप्ता स्रजो - मालिकाः,
सङ्कल्पेन समर्पयामि वरदे ! सन्तुष्टये गृह्यताम् ॥८

हे वर-दायिनि मां ! कल्पना से कल्पित अनेक छोटे-बड़े फूलों की माला मैं आपके लिए लाया हूँ। यह कल्हार अर्थात् सफेद कमल के फूल, रक्त-कमल, मोगरा, मरुबक, स्वर्ण के समान देदीप्यमान स्वर्ण-कमल, जाई, चम्पा, बट- मोगरा, अकुल, कल्प - वृक्ष, कुन्द और पारिजातक इत्यादि कई प्रकार के फूल लाया हूँ। केवड़े के पत्ते और बिविध प्रकार के पुष्प एकत्रित करके लाया हूँ। इन पुष्पों की माला आपको समर्पित कर रहा हूँ। हे अभीष्ट वर - दायिनि माँ ! इन पुष्प - मालाओं को धारण कर सन्तुष्ट हों।

हन्तारं मदनस्य नन्दयसि यैरङ्गैरनङ्गोज्ज्वलै—
र्यैर्भृङ्गावलि-नील - कुन्तल - भरैर्बध्नासि तस्याशयम्,
तानीमानि तवाम्ब ! कोमल - तराण्यामोद - लीला-गृहा—
ण्यामोदाय दशाङ्ग - गुग्गुल - घृतैर्धूपैरहं धूपये ॥९

हे मातः श्री त्रिपुर-सुन्दरि ! जिन देवाधिदेव महा-देव ने अपनी क्रोधाग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया था, उन्हीं भगवान् शङ्कर को आपने अपने कामदेव के समान देदीप्यमान कोमल और सुन्दर अङ्ग-प्रत्यङ्गों के प्रदर्शन से और काले तथा सुन्दर भ्रमरों के समान अपने कृष्ण-वर्ण केशों की सुन्दरता से अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। भगवान् शङ्कर ने भी आपके शरीर के अत्यन्त कोमल अवयवों को अपने आनन्द का साधन बना लिया है। मैं अपनी कल्पना से आपके सुन्दर शरीर के अवयवों को

और भी अधिक आकर्षक बनाने के लिए शुद्ध घी से बनाए हुए दशाङ्ग गुग्गुल की धूप दे रहा हूँ। हे माँ! धूप से सन्तुष्ट हों।

लक्ष्मीमुज्ज्वलयामि रत्न - निवहोद्भास्वत्तरे मन्दिरे,
माला-रूप - विलम्बितैर्मणि-मय - स्तम्भेषु सम्भावितैः।
चित्रैर्हाटक - पुत्रिका - कर - धृतैर्गव्यैर्घृतैर्वर्धितै-
र्दिव्यैर्दीप - गणैर्धिया गिरि-सुते! सन्तुष्टये कल्पताम् ॥१०

हे मातः पार्वति! रत्न-समूह से अत्यन्त देदीप्यमान आपके मन्दिर को मैंने नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों की मालाओं और तोरणों से सुसज्जित किया है। रत्न-जटित खम्भों के स्थान पर मैं अपनी कल्पना से स्थापित खम्भों को विविध प्रकार के चित्रों से सुशोभित कर मन्दिर की शोभा को बढ़ा रहा हूँ। स्वर्ण की छोटी-छोटी सुन्दर पुतलियाँ बनाकर मैंने उनके हाथों में दीप रखे हैं। उन दीपों में गाय का घी डालकर उन्हें जलाया है। इससे आपके मन्दिर की शोभा अतुलनीय हो गई है। हे माँ! मैंने आपके मन्दिर की सजावट और आपको दीप-समर्पण की जो व्यवस्था की है, उससे आप पूर्ण-रूपेण सन्तुष्ट हों।

ह्रींकारेश्वरी - तप्त - हाटक - कृतैः स्थाली - सहस्रैर्भृतम्,
दिव्यान्न - घृत - सूप-शाक - भरितं चित्रान्न - भेदं तथा।
दुग्धान्नं मधु - शर्करा - दधि - युतं माणिक्य-पात्रे स्थितम्,
माषापूप - सहस्रमम्ब! स-फलं नैवेद्यमावेदये ॥११

हे मातः श्री त्रिपुर-सुन्दरि! 'ह्रीं' श्रीलक्ष्मी का बीजाक्षर है। लक्ष्मी के रूप में आप स्वयं इस बीजाक्षर की ईश्वरी अर्थात् अधिष्ठात्री देवता हैं। आपके लिए मैंने अपनी कल्पना से शुद्ध स्वर्ण-थालियों में नैवेद्य के पदार्थ परोस कर रखे हैं। नैवेद्य में अत्यन्त सुन्दर सुगन्धित शुद्ध दूध की खीर है। असली और सुगन्धित घी है। दाल है। कढ़ी, विविध सब्जियाँ आदि भरपूर पदार्थ हैं। साथ ही शहद, शक्कर, दही आदि माणिक्य की कटोरियों में प्रस्तुत हैं। उड़द के बड़े, चने की दाल के बड़े, कुम्हड़े के बड़े और पूरियाँ, कचौड़ियाँ भी समर्पित हैं। हे मातः! उक्त भोजन-सामग्री के साथ मैंने केले, अनार, सन्तरे, मौसम्बी, पका कटहल, आम आदि अनेक प्रकार के फलों की भी भावना की है। इन सभी को मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ। आप इन्हें स्वीकार करें।

सच्छायैर्वरं केतकी - दल - रुचा ताम्बूल - वल्ली - दलैः,
पूगैर्भूरि - गुणैः सुगन्धि - मधुरैः कर्पूर - खण्डोज्ज्वलैः।
मुक्ता - चूर्ण - विराजितैर्बहु - विधैर्वक्त्राम्बुजाऽऽमोदनैः,
पूर्णा रत्न - कलाचिका तव मुदे न्यस्ता पुरस्तादुमे! ॥१२

हे माँ! मैंने अपनी कल्पना से आपकी मुख-शुद्धि के लिए पान के उत्तम बीड़े प्रस्तुत किए हैं। ये ताम्बूल नागबेल और उत्तम केतकी के नीले पत्तों के समान बड़े ही सुन्दर और आकर्षक हैं। अनेक सुगन्धित और मधुर द्रव्यों से युक्त सुपाड़ी और कपूर का चूर्ण डालने से ये ताम्बूल अति स्वादिष्ट बने

है। हे माँ ! मैंने स्वच्छ मोती के समान चूने का प्रयोग किया है और आपको रुचि के अनुकूल ही सुगन्धित द्रव्य डाले हैं। केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, लवङ्ग, इलायची, कङ्कोल ( अजवाइन ) कत्था, मुलेठी, बड़ी सौंफ, पुदीने के अर्क और गोले नारियल के चूर्ण इत्यादि द्रव्यों से युक्त उक्त बीड़े मैंने रत्न - जटित स्वर्ण के पान-पात्र में सजाकर आपके सामने रखे हैं। आप इन्हें स्वीकार कर सन्तुष्ट हों।

कन्याभिः कमनीय - कान्तिभिरलङ्कारामलारार्तिका,
पात्रे मौक्तिक - चित्र-पंक्ति-विलसत् - कर्पूर-दीपालिभिः।
तत्तत् - मृदङ्ग - गीत - सहितं नृत्यत् - पदाम्भोरुहम्,
मन्त्राराधन - पूर्वकं सु - विहितं नीराजनं गृह्यताम् ॥१३

हे मातः श्री त्रिपुर - सुन्दरि ! जिन कन्याओं की अङ्ग-कान्ति अत्यन्त सुन्दर है, ऐसी रूपवती कन्याओं के कोमल हाथों से मैं आपको नीराञ्जन ( आरती ) समर्पित कर रहा हूँ। इसे आप स्वीकार करें। उक्त कन्याओं के हाथों में 'अलङ्कारार्तिका-पात्र' हैं। आरती के ये पात्र सर्वथा स्वच्छ हैं और वे कर्पूर-दीपों की मालाओं से सुसज्जित हैं। आरती के समय तत्तत् ताल—रुद्र-ताल, ब्रह्म-ताल आदि विविध प्रकार के तालों में मृदङ्ग की मधुर और कर्ण-प्रिय ध्वनि और सङ्गीत के साथ उन कन्याओं के पद-कमल नृत्य कर रहे हैं। साथ ही ब्राह्मण लोग वेद-मन्त्रों का उच्चार करते हुए आपकी आराधना कर रहे हैं। इस प्रकार विधि-पूर्वक की जानेवाली आरती आपको समर्पित है। पूरे अन्तःकरण और भक्ति-भाव से सम्पन्न इस आरती को आप स्वीकार करें।

लक्ष्मीमौक्तिक - लक्ष - कल्पित - सितच्छत्रं तु धत्ते रसाद्,
इन्द्राणी च रतिश्च चामर - वरे धत्ते स्वयं भारती।
वीणामेन - विलोचनाः सु-मनसां नृत्यन्ति तद् - राग-वद्,
भावैराङ्गिक - सात्त्विकैः स्फुट-रसं मातस्तदाकर्ण्यताम् ॥१४

हे मातः श्री त्रिपुर-सुन्दरि ! अपने द्वारा समर्पित इस मानसोपचार-पूजा में राजोपचार अर्पित करते हुए मैं आपके लक्ष्मी-स्वरूप को लाखों मोतियों की झालर से सुसज्जित करता हूँ। स्वच्छ चाँदी का छत्र आपने प्रसन्नता-पूर्वक अपने मस्तक पर धारण किया है। हे माँ ! आपके दोनों ओर इन्द्र-पत्नी 'इन्द्राणी' और कामदेव की पत्नी 'रति' अपने हाथों में उत्तम चँवर लिए खड़ी हैं। स्वयं सरस्वती वीणा लिए उसके तारों से मधुर-ध्वनि निकाल रही हैं, जिसकी झङ्कार पर विविध रागों—जोगी, भैरव, सारङ्गा, भूप, धनाश्री, बसन्त, मल्लार, मालकंस, भैरवी आदि के अनुरूप अप्सराएँ अनेक प्रकार के नृत्य कर रही हैं। साथ ही वे अपने अङ्गों के प्रदर्शन—कर-कमलों की मुद्राओं एवं मुख-मण्डल से व्यक्त होनेवाले सात्त्विक शृङ्गार, कारुण्य और शान्त रस द्वारा - भाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे हैं। ये सभी—नृत्य, वाद्य और सङ्गीत आदि आपको समर्पित हैं। इन सबसे आप आनन्दित हों—ऐसी मेरी प्रार्थना है।

ह्रींकार - त्रय - सम्पुटेन मनुनोपास्ये ! त्रयी मौलिभि—
र्वाक्यैर्लक्ष्य-तनो तप - स्तुति - विधौ को वा क्षमेताम्बिके !

संल्लापाः स्तुतयः प्रदक्षिण - शतं सञ्चार एवास्तु ते,
सम्वेशो नमसः सहस्रमखिलं त्वत् - प्रीतये कल्पताम् ॥१५

हे जगदम्बिके ! आपका 'पञ्च - दशाक्षर' मन्त्र तीन 'ह्रीं'-बीजाक्षरों से सम्पुटित है। यह मन्त्र आपको अति प्रिय है। अतः आप इसी मन्त्र द्वारा उपास्या हैं। आपके स्वरूप को उपनिषदों में लिखे वेद-मन्त्रों से ही जाना जा सकता है। आप साक्षात् पर-ब्रह्म - स्वरूपा हैं। आपकी स्तुति करने में भला कौन समर्थ हो सकता है ! आपके यथार्थ स्तवन के लिए मेरे पास शब्द ही नहीं हैं। वास्तव में हमारा जो कुछ भी वार्त्तालाप है, वह सभी आपकी स्तुति-रूप हो और इधर - उधर हमारा चलना-फिरना आपकी शतशः परिक्रमा। इसी प्रकार निद्रावस्था में हमारा इधर-उधर पलटना आपको साष्टाङ्ग प्रणाम हो। हे माँ ! मेरी इस मानसोपचार - पूजा से आप सन्तुष्ट हों।

**फल-श्रुति**

श्रीमन्त्राक्षर - मालया गिरि - सुतां यः पूजयेच्चेतसा,
सन्ध्यासु प्रति - वासरं सुनियतस्तस्यामलं स्यान् मनः।
चित्ताम्भोरुह - मण्टपे गिरि - सुता नृत्तं विधत्ते रसाद्,
वाणी-वक्त्र - सरोरुहे ! जलधिजा गेहे जगन्मङ्गला ॥१

'श्रीविद्या' के पूजा-यन्त्र को 'श्रीयन्त्र' कहते हैं। उसी प्रकार 'श्रीविद्या' के मन्त्र को 'श्री-मन्त्र' कहते हैं। इस **'मन्त्र-मातृका-माला स्तोत्र'** के १५ श्लोकों की प्रथम पंक्ति के आदि अक्षरों को क्रम से माला के समान गूँथने से **'श्री-मन्त्राक्षर-माला'** प्रस्तुत हो जाती है।

'श्री मन्त्राक्षर-माला' से युक्त इस **'मानस-पूजा स्तोत्र'** द्वारा गिरि-सुता पार्वती श्रीललिता-महा-त्रिपुर-सुन्दरी के भक्त द्वारा अन्तःकरण से नित्य नियमानुसार प्रातः, मध्याह्न एवं सन्ध्या—तीनों समय स्तुति करना ही श्रीललिता महा-त्रिपुर-सुन्दरी की **'पूजा'** है। जो भक्त विधि-पूर्वक जगदम्बा की यह पूजा करता है, उसका मन निर्मल हो जाता है। उसके मानस-पटल-रूपी मण्डप में श्रीललिता—महा-त्रिपुर-सुन्दरी अपनी इच्छा से नृत्य करती हैं। उसकी वाणी में सरस्वती जी सदा विराजमान रहती हैं। उसी प्रकार उसके घर में जगन्मङ्गला लक्ष्मी जी नित्य निवास करती हैं अर्थात् इस स्तोत्र का नियमित पाठ करने से श्रीविद्या की उपासना करनेवाले भक्त के घर में श्रीविद्या के साथ श्री सरस्वती और श्री लक्ष्मी का भी निवास रहता है। इस स्तोत्र की यही महिमा है।

इति गिरि-वर-पुत्री-पाद-राजीव-भूषा, भुवनममलयन्ती सूक्ति-सौरभ्य-सारैः।
शिव-पद-मकरन्दस्य निन्दनीयं निबद्धा, मदयतु कवि-भृङ्गान् मातृका-पुष्प-माला ॥२

'मन्त्र-मातृका-पुष्प-माला स्तोत्र' की 'फल-श्रुति' में रचयिता श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य कहते हैं कि इस स्तोत्र के प्रत्येक श्लोक के प्रथम अक्षर को क्रम से जोड़ने पर श्री-विद्या-मन्त्र के पुष्प-रूपी अक्षरों की माला बन जाती है। यह माला गिरि-राज हिमालय की कन्या श्रीदेवी पार्वती के चरण-कमलों का अलङ्कार ही है। इस पुष्प-माला के प्रत्येक पुष्प-रूपी अक्षर की सुगन्ध से सम्पूर्ण भू-मण्डल निर्मल और प्रसन्न रहता है। पर-ब्रह्म-स्वरूप भगवान् सदा-शिव के चरण-कमलों से प्रवाहित होनेवाले इस रस की सुगन्ध से कवि और विद्वान् लोग, भ्रमर के समान तन्मय हो जाते हैं।

# अध्यात्म या आध्यात्मिक विज्ञान की सार्थकता

* पं० केशरीकुमार मिश्र, नेपालगंज (नेपाल)

आज के शिक्षित समाज में **'अध्यात्म'** या **'आधि-दैविक विज्ञान'** को निरर्थक एवं अज्ञान-जनित मूढ़ मान्यता कहने और भौतिक **'विज्ञान'** के चाटुकारों की तोते–जैसी रटी भाषा में खिल्ली उड़ाने का आज फैशन-सा चल पड़ा है। अपने बाप-दादाओं को मूर्ख कहकर, अपने को **जङ्गलियों** की सन्तान घोषित करने में गौरव का अनुभव करनेवाला, संसार के ज्ञान एवं अनुभव से शून्य––आज का यह जड़ शिक्षित समाज अपने को सर्वज्ञ होने का दम्भ करता हुआ, अन्य पशुओं से विशिष्ट **'मानव'** को प्राप्त विचार और ऊहापोह की शक्ति से कोसों दूर रहकर **'प्रशिक्षित पशु-वत्'** आचरण करते रहने में ही आत्म-तुष्टि उपलब्ध करता रहता है। युगों की 'दासता' से दिग्-भ्रमित आज का प्रशिक्षित मस्तिष्क जब इतना पराधीन बना हुआ है कि इन्हें वर्तमान विश्व के ख्यात-नामा वैज्ञानिकों की उक्तियाँ जब बताई जाती हैं, तो मस्तिष्क को लगे झटके से उत्पन्न बौखलाहट में ये उन वैज्ञानिकों को भी अन्ध-विश्वासी कह डालने में नहीं चूकते !

आधुनिक विश्व के अद्वितीय गणिताचार्य एवं अद्भुत आविष्कारक आइन्स्टीन के शब्द–'साइंस विदाउट रिलीजन इज़ लेम ऐण्ड रिलीजन विदाउट साइंस इज़ ब्लाइण्ड' (अर्थात् 'धर्म के अभाव में विज्ञान पंगु है और विज्ञान-रहित धर्म अन्ध-वत् है') कितने उद्बोधक हैं, किन्तु आधुनिकता से पराभूत आज की नई पीढ़ी को इन शब्दों में अन्ध-विश्वास दिखाई देता है ! उसी प्रकार जब इन पथ-भ्रान्तों को सर ओलिवर लॉज जैसे वैज्ञानिक को **'दि रिलीजन आफ़ दि रिलीजन ऐण्ड दि रिलीजन आफ़ साइंस आर वन'** अर्थात् 'धर्म एवं विज्ञान का क्षेत्र एक ही है' कहते हुए बताया जाता है, तो वे धर्म की ऐसी व्याख्या करना आरम्भ कर देते हैं कि जिसकी कभी किसी ने कल्पना भी न की होगी।

सर ओलिवर लॉज का सङ्केत जिस धर्म के प्रति है, वह हिन्दू **'अध्यात्म-विज्ञान'** की नहीं, **'आधि-दैविक विज्ञान'** की एक निम्न-तर अशिक्षित जन-साध्य शाखा-मात्र है। कोई भी अध्ययन-शील व्यक्ति सहज ही अनुभव कर सकता है कि हिन्दू **'अध्यात्म-विज्ञान'** की **'अधराम्नायी शाखा'** में दीक्षित गौतम बुद्ध द्वारा प्रचारित 'बौद्ध-धर्म', जो कालान्तर में **'अधराम्नाय उपासना'** को गौणकर **नैऋत्याम्नाय** की उपासना ग्रहण कर चुका था, उसी से प्रेरणा प्राप्त कर **'ईसाई धर्म'** का प्रादुर्भाव हुआ। इस तथ्य को प्रत्येक सच्चा इतिहासकार भली - भाँति जानता है। हिन्दू - विज्ञान के उस हेय एवं अज्ञ-जन-रञ्जक **'नैऋत्याम्नाय'** का विकृत-तम रूप ही सर ओलिवर लॉज का **'धर्म'** है, जिसे वे **'धर्म'** घोषित करते हैं। दूसरे शब्दों में **'पूर्ण विज्ञान'** यदि निरर्थक है, तो 'धर्म' भी निरर्थक है क्योंकि एक का सार्थक और दूसरे का निरर्थक होना असम्भव है।

आश्चर्य की बात है कि 'बैक्टीरिया' और 'वैसिलस' में से किसी भी जाति का कोई भी रोग-कीटाणु दिखाई नहीं देता, परन्तु उनके अस्तित्व के सम्बन्ध में आज का–अपने को प्रबुद्ध घोषित करने-वाला दम्भी आधुनिकतावादी व्यक्ति अन्ध-विश्वास ही नहीं रखता, वरन् उनसे चरम सीमा तक भयभीत भी रहता है ! विचार करें कि रोग-कीटाणु यदि सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र से दिखाई देते हैं, तो पहले तो यह प्रश्न उठता है कि उनसे भयभीत रहनेवालों में से कितनों ने उन्हें अपनी आँखों से देखा है ? दूसरे

'माइक्रोस्कोप' की शक्ति-सीमा से बाहर विश्व में कुछ भी नहीं है—ऐसी झूठी मान्यता 'विज्ञान' है या घोर 'अज्ञान' ?

वास्तविकता यह है कि 'विज्ञान' का नाम रटनेवाली नई पीढ़ी विज्ञान की परिभाषा तक नहीं जानती। प्रत्यक्ष, प्रयोग और अनुमान से सिद्ध तथ्य को **'विज्ञान'** कहा जाता है। आज भी नेपाल और भारत में हिन्दू **'आधि-दैविक विज्ञान'** के ऐसे कुशल ज्ञाता विद्यमान हैं, जो अपने 'प्रयोग-बल' से प्रायः अकल्पनीय कार्य सम्पन्न करते रहते हैं।

आज के मानव ने जो भी वैज्ञानिक शक्ति अर्जित की है, वह सब 'स्थूल' से ध्यान हटा कर 'सूक्ष्म' की ओर दृष्टि ले जाने का ही परिणाम है। 'एलेक्ट्रो-माइक्रोस्कोप' का आविष्कार सूक्ष्मता के अन्वेषण का ही परिणाम था, जिसने आज के 'परमाणु' का ज्ञान दिया। पार्थिव वस्तु-पदार्थ की सूक्ष्मता की ज्ञान-सीमा ही 'परमाणु' है। परमाणुओं के ऋणाणुओं की गणना करते हुए वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि पदार्थ में और अधिक सूक्ष्मता की विद्यमानता सम्भव है।

सृष्टि की उत्पत्ति का कारण केवल पार्थिव तत्त्व ही नहीं है। १ पदार्थ और अस्तित्व, २ द्रवत्व और शीतलता, ३ ताप और प्रकाश, ४ गति और शोषण तथा ५ आधार और शून्यत्व—ये पाँच तत्त्व भी ध्यान देने योग्य हैं। इन्हें हिन्दू-विज्ञान में क्रमशः—१ पृथ्वी, २ जल, ३ तेज, ४ वायु और ५ आकाश नाम दिया गया है। इन्द्रिय-गम्य एवं इन्द्रियातीत सृष्टि के कारण ये अनुभव-सिद्ध हैं। सृष्टि के उक्त पाँच उपादान - तत्त्वों की सूक्ष्मता का ज्ञान प्राप्त कर उनसे लाभान्वित होने के विज्ञान को हिन्दू - विज्ञान में **'आधि-भौतिक विज्ञान'** के नाम से जाना जाता है क्योंकि इस **'उपादान - पञ्चक'** को पूर्व - वैज्ञानिकों ने **'पञ्च महा-भूत'** नाम दिया है।

यहाँ यह ध्यान रहे कि उक्त 'उपादान-पञ्चक' क्रमशः एक दूसरे से इस प्रकार सूक्ष्म हैं कि जहाँ पदार्थ-अस्तित्व की सूक्ष्मता की सीमा समाप्त हो जाती है, वहीं द्रवत्व (शीतलता) प्रारम्भिक विन्दु है। साथ ही यह भी न भूलना चाहिए कि ये पाँचों 'उपादान-तत्त्व' एक दूसरे में अनुस्यूत हैं। इनमें से प्रथम उपादान—**'पदार्थ और अस्तित्व'**, की स्थूलता जिसे **'पृथ्वी-तत्त्व'** कहते हैं, अन्वेषण के साथ ही उसमें अनुस्यूत **'पार्थिव जल'** (द्रवत्व), **'पार्थिव तेज'** (ताप-प्रकाश), **'पार्थिव वायु'** (गति) और **'पार्थिव आकाश'** (आधार, ध्वनि आदि) को भी भारतीय ऋषियों द्वारा खोज लिया गया। आज आधुनिक विज्ञान का अन्वेषण उसी दिशा में उन्मुख है।

जिस प्रकार **'पदार्थ'** में स्थूल रूप में शेष **'उपादान-चतुष्टय'** अनुस्यूत हैं, उसी प्रकार **'द्रवत्व'**—पार्थिव 'द्रवत्व' नहीं—पदार्थ की सूक्ष्मता की सीमा के उपरान्त जिस सूक्ष्मता का श्रीगणेश होता है, उस 'द्रवत्व' में—अवशिष्ट चारों उपादान विद्यमान हैं। **'द्रवत्व'** या शीतलता में स्थित **'पदार्थ-तत्त्व'** (पार्थिव-भाग) की सृष्टि का वर्गीकरण हिन्दू-विज्ञान में भूत-प्रेत-पिशाचादि नामों से किया गया है। **'जल - तत्त्व'** (शीतलता) में स्थित शीतलता की सृष्टि (जैसे 'पृथ्वी - तत्त्व' में स्थित पृथ्वी - तत्त्व की सृष्टि परमाणु और विषाणु हैं) को राक्षस, किन्नर आदि नामों से व्यक्त किया गया है। जलीय तैजस् सृष्टि—तीर्थ-देवता, ग्राम-देवता आधि-दैव वर्गों की सृष्टि है। इस प्रकार जलीय, वायवीय सृष्टि—भूत, कात्यायनी, चेटिका एवं यक्षिणियों की सृष्टि है (तैजस् वायवीय सृष्टि में भी यक्षिणी-समूह है, किन्तु यह उनसे निम्न - तर कोटि की—स्थूल-तम सृष्टि है) तथा जलीय आकाशीय सृष्टि—यक्ष-बैतालादि की है।

ध्यान रहे कि ये सृष्टियाँ एक दूसरे से क्रमशः सूक्ष्म, सूक्ष्म - तर और सूक्ष्म - तम हैं। सूक्ष्मता यहीं समाप्त नही होती। इसके उपरान्त इसी प्रकार पाँच तैजस्, फिर उनसे आगे पाँच वायवीय एवं पुनः पाँच सूक्ष्म-तम आकाशीय सृष्टियाँ हैं। इन एक से अधिक दूसरी सूक्ष्म पच्चीस सृष्टियों का ज्ञान एवं उनसे लाभान्वित होने का उपाय 'हिन्दू-विज्ञान' में **'आधि - भौतिक विज्ञान'** के नाम से प्रसिद्ध है। इससे आगे का सूक्ष्म विज्ञान ही **'आधि-दैविक विज्ञान'** है, जिसकी दशाधिक शाखाओं की सूक्ष्मता की सीमा पर **'अध्यात्म'** आरम्भ होता है। उस **'आधि-दैविक'** या **'आध्यात्मिक विज्ञान'** को निरर्थक कहना जड़ता को छोड़कर और क्या है !

किसी भी हिन्दू **वैज्ञानिक** ने आज तक अपने किसी अन्वेषण या आविष्कार का **'आरक्षण'** (कापीराइट या रिज़र्वेशन) नहीं किया। उसके आविष्कार **'सर्व-जन हिताय'** थे। इसी से हिन्दू वैज्ञानिकों ने इन गहन - तम सूक्ष्मताओं में पैठकर सृष्टि के गुप्त - तम रहस्यों का पता लगाकर कुछ इस प्रकार के वैज्ञानिक प्रयोगों एवं आचारों का विधान निर्दिष्ट किया कि विज्ञान की गहनता में प्रवेश पाने में असमर्थ जन-साधारण भी उनसे बिना किसी बाह्य व्यय-साध्य उपकरण की सहायता के, अपनी सामर्थ्य के अनुसार लाभान्वित हो सके।

सम्पूर्ण विज्ञान विश्व की अनन्तता से भी अनन्त है। अतः वह सङ्केत - रूप में ही वर्णित हो सकता है। आधुनिक स्थूल-तम विज्ञान की शिक्षा भी सङ्केतों द्वारा ही दी जाती है। हिन्दू वैज्ञानिकों ने अपने ग्रन्थों में तीन प्रकार के सङ्केतों का प्रयोग किया है --(१) अत्यन्त गहन एवं विस्तृत विषय **'सूत्र'**-रूप में बताए गए हैं। इन सूत्रों का एक-एक अक्षर विशिष्ट अर्थ का द्योतक है। (२) **'श्लेष'**-रूप सङ्केत में वह सारा विषय है, जिसके दुरुपयोग से अबोध लोग आत्म-क्षति कर सकते हैं। (३) **'विस्तार'** - रूप सङ्केत में उक्त विज्ञान का वर्णन है।

केवल अंग्रेजी भाषा का ज्ञान रखनेवाला यदि आधुनिक वैज्ञानिक पुस्तकों को स्वयं पढ़े और किसी विश्व-विद्यालय की प्रयोग-शाला में प्रशिक्षण प्राप्त किए बिना कोई प्रयोग करना चाहे, तो उसकी क्या दशा होगी ? वह कहाँ तक सफल हो पाएगा ? इस बात को कोई भी समझ सकता है। यही बात हिन्दू-**'आधि-दैविक'** एवं **'आध्यात्मिक'** विज्ञानों के सम्बन्ध में समझनी चाहिए। उक्त तीन सङ्केतों के ज्ञाता एवं इन विज्ञानों के अनुभवी प्राध्यापक यद्यपि अब कम ही शेष रहे हैं, तथापि वे भी आज के शिक्षित लोगों की 'अहम्मन्यता' और 'जड़ता' के कारण उदासीन-से हैं। इस **'महा-विज्ञान'** के रहस्य को वे अपने हृदय में सीमित किए विवश हैं क्योंकि **'आधि-दैविक'** या **'आध्यात्मिक विज्ञान'** के प्रशिक्षण एवं उससे लाभान्वित होने के लिए सतत प्रयास, समय, धैर्य, त्याग एवं लगन की आवश्यकता होती है, किन्तु आज के अधिकांश जिज्ञासुओं में प्रायः इन सबके प्रति उपेक्षा का ही भाव दिखाई देता है। सन्तोष की बात यही है कि 'चण्डी'-प्रकाशन के कारण पिछले वर्षों में इस स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है और आशा है कि भारत का यह अनुभव - सिद्ध प्राचीन **'आध्यात्मिक विज्ञान'** पुनः अपने अनुरूप सारे विश्व द्वारा सम्मान प्राप्त करेगा।

प्रेषक : **पं० प्रभाकर मिश्र, काठमाण्डू (नेपाल)**

अनमोल विचार

# मातृ-उपासक के हृदयोद्गार

मां ! क्या सचमुच अब तुम उस रूप में फिर आओगी ही नहीं क्या ? नहीं आना था, तो इतनी ज्वाला क्यों सिलगाई अम्मा ? क्या कहा ?—उससे भी अधिक, उससे भी दिव्य महान् आकर्षक स्वरूप में तुम आना चाहती हो कि मैं उस रूप को भूल जाऊँ। मैया ! वही करो, जो तुम्हारी इच्छा हो। मैं अज्ञ क्या जानूं, पर अम्मा मेरी, एक बार तो, बस, एक बार तो और अपने उस अलौकिक रूप में दर्शन दे जाओ। हृदय तड़फड़ाता है। आज कितने युग बीत गए मैया, नींद, भूख सब नष्ट हो चुकी। अब तो आ जाओ मेरी जननी ! निष्ठुर न बनो इतनी।

क्या वास्तव में तुम इतनी निष्ठुर हो गई हो माँ ! तुम्हारा वह वात्सल्य, वह क्षमा - शीलता, वह स्नेह, वह दुलार कहाँ गया क्षण भर में ? मुझे छोड़ कर भी तुम्हें और कुछ प्यार मिल गया क्या ? माँ, कैसे मानूँ ? तुम्हारा स्नेह जो देख चुका हूँ माँ ! इतनी निष्ठुर न बनो मैया ! आओ, आओ, जल्दी आओ ! इस शरीर के रहते इन अभागी आँखों को एक बार और कृतार्थ कर दो। दिन निकला, दोपहर हुई, अपराह्न आया और यह सूर्य भी अस्ताचल की ओर चल दिया। तुम नहीं आईं, नहीं ही आईं अम्मा ! कब तक और तरसाओगी ? अब तो सहन नहीं होता मेरी अम्मा ! क्या तुम नहीं जानती, मेरे हृदय की जलती भीषण ज्वाला की आँच तुम तक नहीं पहुँचती क्या ?

क्या नष्ट करना चाहती हो तुम मेरा ? मान ? कर दो, बड़े प्रेम से कर दो। मुझे उसकी आवश्यकता नहीं ! पर एक विश्वास दिला दो पहिले। मुझे पतित तो नहीं करोगी ? रखोगी तो अपनी गोदी में ? कितना मूर्ख हूँ माँ ! मैं, और अपने इस अबोध शिशु की मूर्खता पर दुलार से हृदय क्यों नहीं भर जाता तेरा ? मैं तेरी रक्षा की चिन्ता करता हूँ—वाह रे अभागे ! जगद्-रक्षिका की रक्षा ! तूने उसे माँ स्वीकार ही कब किया ? माँ री ! इसे तो तू मेरा मातृ-स्नेह क्यों नहीं मान लेती ? अबोध शिशु की मूर्खता पर ध्यान देगी, उसी से चिढ़ेगी, तो तेरा मातृत्व कहाँ रहेगा मैया ? मेरी अन्तर्प्रेरिका, अटल विश्वास क्यों नहीं उत्पन्न कर देती हृदय में ? कुछ भी हो, पर माँ, अपने उस त्रि-गुणात्मक रूप की झलक तो दिखा हो री ! हृदय को शान्ति नहीं मिलती। अब तो कब आएगो अम्मा ? आज ? अब ? आ जा, आ जा मेरी मैया ! उसी रूप में फिर आ जा एक बार।

तो क्या तू मुझे भूल भी सकती है ? मेरी दुष्टता तो भूल जाने योग्य ही है मेरी जननी ! पर तेरे स्नेह को देखते विश्वास नहीं होता कि तू भूल जायगो ! क्या कहा ? —हाँ, मैं तो सर्वदा भूलता ही रहा—नई बात क्या है ? पर तू तो कभी मेरे जैसी नहीं बनी। कितनी बार नहीं तूने बार-बार आकर मुझ भूले हुए को अपनी ओर आकर्षित किया। पर अम्मा ! अब तो किसी रूप की आकांक्षा नहीं। अम्मा, यह मोहक रूप तो आज तक के तेरे सम्पूर्ण दर्शनों में अद्वितीय ही था। माँ ! इसी रूप में—इसी रूप में मेरे हृदय में स्थायी निवास कर ले मेरी जननी ! बस—'दिल के आईने में है तस्वीरे यार, जब जरा गर्दन झुका ली, देख लो।' हो जाए वह नशा, पिला दे मैया कि तुझे छोड़कर—तेरे इस दिव्य रूप को छोड़कर, सब भूल जाऊँ।

[शेष पृष्ठ २४ पर]

# शक्ति-उपासना के आधार

• पं० रामकृष्ण पाण्डेय, फैजाबाद (उ० प्र०)

इतिहासज्ञों और पुरातत्त्व-वेत्ताओं ने अपनी परिश्रम-पूर्ण खोज के आधार पर 'मोहनजोदड़ो' के अवशेषों से प्राप्त होनेवाले निष्कर्षों के माध्यम से जिन मूर्तियों का उल्लेख किया है, उनमें **'शिव'** और **'शक्ति'** की प्रतिमाएँ हैं। इससे स्पष्ट है कि ईश्वरीय ज्ञान-पिपासु केवल पुरुष-वर्ग ही रहा है, ऐसा मानना उचित नहीं प्रतीत होता। नारी की महिमा भी इस ओर पुरुष के समान ही गति की परिचायक रही है। वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होनेवाले **'उषस्, सरस्वती, द्यौस, रात्रि, वाणी, इला, इडा, सूर्या, इन्द्राणी, वरुणानी, अश्विनी'** आदि नामों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

ऋषियों के समान प्राचीन भारत की उक्त नारियाँ भी मन्त्र-द्रष्टा रही हैं और इन्होंने अपनी साधना एवं तप-बल से परमात्मा के साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करने में मन्त्र - द्रष्टा पुरुष ऋषियों के समान ही सफल प्रयास किया। इसी से वैदिक - काल के साहित्य में **'नारी'** की महिमा का श्रेष्ठ गान हुआ है और पुराण-काल में **'शक्ति-उपासना'** का एक सबल आधार प्राप्त होता है। निःसन्देह, इस उपासना का बीजारोपण एवं अंकुरण वैदिक काल में ही स्वीकार करना युक्ति-युक्त होगा।

'बौद्ध-दर्शन' के जिस मत की चर्चा का प्रसार और प्रचार आज व्यापक रूप 'से दृष्टि-गोचर है, उसमें उसके साधना-पक्ष की अवहेलना करना उचित नहीं है। यदि यह कथन मान भी लें कि बौद्ध-धर्म 'हिन्दू-धर्म' का विरोधी था, तो भी इस सत्य की उपेक्षा कैसे की जा सकती है कि बौद्ध-धर्मानुयायी भी विविध रूपों में स्पष्ट-तया **'शक्ति-उपासक'** ही रहे हैं। बौद्धों का **'शून्य-वाद'** जैसा भी हमारे समक्ष है, उसका गहन चिन्तन 'सृष्टि' और 'लय' के जिस रहस्य की ओर सङ्केत करता है, वह 'शाक्त' - मतावलम्बियों के मत से कहाँ और किस प्रकार भिन्न है ? शब्दों का अन्तर तो प्रत्यक्ष है, परन्तु भाव की सर्जना का आधार-साम्य स्पष्ट है।

बौद्धों के उपास्य देव और देवी—**'तार-तारा'** हिन्दुओं के **'शिव'** और **'शक्ति'** के समान ही हैं। **'भगवती तारा'** शाक्त और बौद्ध—दोनों ही धर्मों में समान रूप से प्रतिष्ठित हैं। बौद्धों के **'महा-यान-सम्प्रदाय'** में **'तारा'** ही पूजित-अर्चित रही हैं। बौद्धों के अतिरिक्त **'नाथ - सम्प्रदाय'** में भी **'शक्ति-उपासना'** के प्रमुख स्वरूप **'कुण्डलिनी-शक्ति'** को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है। इसी प्रकार **'जैन - धर्म'** में भी किसी - न - किसी रूप में **'शक्ति - उपासना'** का वर्चस्व प्राप्त होता है। जैन - धर्मावलम्बी भगवती **'चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, सिद्धि - दायिका'** आदि रूपों में **'महा-शक्ति'** की ही भाव - पूर्ण साधना करते हैं। इतना ही नहीं, भारत की सीमाओं से पार—दूरस्थ **'बेबीलोन, मिस्र, चीन, ग्रीक, रोम, नेपाल, जावा'** आदि देशों में भी **'शक्ति-उपासना'** के मुखरित स्वरूप के दर्शन होते हैं।

**'शाक्त-उपासना'** के विज्ञान को समझने के लिए उसे **'स्थूल'** और **'सूक्ष्म'** दो विभागों में वर्गीकृत करना उपयुक्त होगा। स्थूल को समझ पाना सरल और सहज बोध - गम्य है। उचित होगा, यदि हम अपने 'शरीर' से ही चिन्तन आरम्भ करें। 'शरीर' की सक्रियता का मूल कारण क्या उसके भीतर विद्यमान **'चेतन-शक्ति'** ही नहीं है ? इस **'चेतन - शक्ति'** को प्रत्यक्ष देख पाना यद्यपि सम्भव नहीं है, तथापि इसके प्रभाव को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि यह बिल्कुल स्पष्ट है कि शरीर से 'चेतन-शक्ति' यदि निकल जाय, तो वह तुरन्त ही क्रिया-हीन, गति-हीन और शव-रूप हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि आध्यात्मिक **'विश्वास'** का आधार **'स्थूल'** में नकारात्मक तथ्यों पर ही आधारित है क्योंकि **'प्रत्यक्ष'** प्रमाण का अभाव है--**'प्रत्यक्ष'** इस अर्थ में कि **'स्थूल-रूप'** में न तो **'शक्ति'** का साक्षात्कार किया जा सकता है और न उसके विषय में कोई प्रामाणिक सूचना ही मिलती है। वास्तव में यह **'चेतन-शक्ति'** प्रकृति का सजीव अङ्ग है। इसे इसी रूप में सर्वत्र अनुभव किया जा सकता है--समझा जा सकता है। **'जड़'** और **'चेतन'** की जो भी मान्य परिभाषाएँ हैं, उन्हें ही आधार मान लिया जाय, तो भी यह 'चेतन-शक्ति' का ही विलास स्पष्ट होगा। जीव-जन्तुओं के अतिरिक्त वृक्षों और अन्यान्य वस्तुओं में भी **'गति'** के लक्षण विज्ञान द्वारा प्रमाणित हो चुके हैं। इस **'गति'** का आधार क्या **'चेतन-शक्ति'** से अतिरिक्त कुछ और मान सकते हैं ? नहीं !

**'गति'** तो हमारी पृथ्वी में भी है और यह प्रमाणित है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चौबीस घण्टे में एक परिक्रमा पूरी कर लेती है। यह **'गति'** बिना **'चैतन्य-शक्ति'** के कैसे सम्भव है ? **'गति'** का स्वरूप **'व्यक्त'** और 'अव्यक्त' दोनों ही सम्भव है। इसे ही 'स्थूल' और 'सूक्ष्म' कहना युक्ति - युक्त होगा। 'सक्रियता' अथवा **'गति'** का एक स्पष्ट लक्षण है, जो 'व्यक्त' और 'अव्यक्त'--दोनों ही रूपों में **'जड़ और चेतन'** सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। इस **'गति'** को, जिसके पीछे **'चेतना-शक्ति'** का प्रवाह है, 'लिङ्ग-भेद' की सीमा में न तो घेरा जा सकता है और न बाँधा जा सकता है। **'शक्ति'** मात्र **'शक्ति'** है। उसे भले ही किसी अन्य नाम से पुकारा जाय। **'गति'** या 'सक्रियता' एक निर्विकार रूप है **'शक्ति'** का, जो यत्र-तत्र-सर्वत्र विद्यमान है। अतः **'शक्ति'** के इस 'व्यापक' तत्त्व को स्वीकार करना ही होगा। 'श्रीदेवी-भागवत' में **'शक्ति'** की सु-स्पष्ट व्याख्या की गई है--'श' ऐश्वर्य और **'क्ति'** पुरुषार्थ की सिद्धि के सूचक हैं। इन दोनों की देनेवाली भगवती को 'शक्ति' की संज्ञा प्राप्त है। अन्यत्र भी **'भगवती'**-शब्द की ऐसी ही व्याख्या हुई है। **'भग'** शब्द के चार अर्थ हैं--१ समृद्धि, २ वृद्धि, ३ सम्पत्ति और ४ यश। इनकी अधिष्ठात्री **'भगवती'** ही हैं। इसीलिए वे **'भग-रूपा'** हैं।

**'शक्ति'** आदि - रूप है, प्रकाश - रूप है। योगी - जन **'चित्-शक्ति कुण्डलिनी'** की इसी रूप में उपासना करते हैं। **'शक्ति'** सर्व-व्यापक तत्त्व है। इसीलिए वह सर्वाराध्या है। यही **'शक्ति - तत्त्व'** समग्र सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय का आधार है।

'शक्ति' के उक्त तत्त्व को मात्र एक धर्म, जाति अथवा सम्प्रदाय तक सीमित मान लेना, अत्यन्त संकुचित मनो-वृत्ति और दृष्टि-कोण का परिचायक है। ऐसा कोई भी चैतन्य प्राणी, जिसमें 'शक्ति' का विलास हो रहा है, भौगोलिक आधार पर हजारों किलोमीटर की दूरी पर स्थित रह सकता है--उसका रहन-सहन तथा अन्यान्य वैचारिक और व्यवहार-धरातल एक दूसरे से नितान्त भिन्न हो, यह सम्भव हो सकता है, परन्तु **'शक्ति'** के आधार-भूत तत्त्व उसमें सिहरन, कम्पन और क्रियात्मकता का परिचय दे रहे हैं, ऐसा जानते और मानते हुए कोई **'शाक्त'** उसे न तो अपरिचित मानेगा और न विजातीय। न उसके प्रति उसे घृणा हो सकती है और न ही वह उससे किसी प्रकार का दुराव कर सकता है।

सङ्कीर्ण और संकुचित दृष्टि **'शाक्तों'** अथवा **'शक्ति-उपासकों'** की कर्म-स्थली से कोसों दूर की बात है। **'शाक्त'** तो सर्वत्र और सभी में **'शक्ति'** के ही विलास को देखता है। फिर वह किसी से नफरत क्यों करेगा--घृणा क्यों करेगा, वह विभाजक रेखा क्यों खींचेगा···? उसकी यह सर्व-समत्व की भावना **'शक्ति-उपासना'** की विश्व-व्यापकता की ही परिपुष्टि करती है। ●●●

# सप्तशती-सम्बन्धी जिज्ञासाएँ

• 'कुलभूषण', प्रयाग

'मार्कण्डेय - पुराणोक्त' '**श्रीदुर्गा - सप्तशती**' के सम्बन्ध में पिछले ५० वर्षों में अनेक नवीन संस्करणों का प्रकाशन हुआ है। इससे '**सप्तशती**' के प्रेमी पाठकों के मन में विविध प्रकार की आशङ्काएँ उठती रहती हैं, जो स्वाभाविक हैं। कुछ ही समय हुआ, भीलवाड़ा (राजस्थान) से श्री शान्तिलाल शारदा जी ने एक ऐसा ही पत्र लिखा है, जिससे उक्त कथन की पुष्टि होती है। श्री शारदा जी ने अपने पत्र में तीन जिज्ञासाएँ प्रस्तुत की हैं। यथा -

(१) '**वीज-त्रयात्मक सप्तशती**' एवं स्वामी तत्त्वबोधाश्रम जी की '**सम्पूर्ण सप्तशती**' के वीज-मन्त्रों में अनेक स्थलों पर अन्तर मिलता है। इससे शङ्का उत्पन्न होती है कि कौन - से वीज - मन्त्र शुद्ध माने जायँ ?

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि '**गुप्तावतार**' बाबाश्री द्वारा भारत की स्वाधीनता के लिए सन् १९३२ में जिस '**मन्त्रात्मक सप्तशती**' द्वारा अनुष्ठान किया गया और जो सफल भी रहा क्योंकि अंग्रेजों के प्रति सङ्कल्प-वाक्य--'**यदि यूयं व्यापारमिच्छथ, इंग्लैण्डं गच्छ**' अर्थात् यदि तुम लोग भारत से व्यापारिक सम्बन्ध बनाए रखना चाहते हो, तो भारत छोड़कर इंग्लैण्ड जाओ' के अनुरूप ही सन् १९४२ में '**भारत छोड़ो**' आन्दोलन का सूत्रपात राष्ट्रीय नेता महात्मा गांधी द्वारा किया गया और १९४७ में अंग्रेज भारत को स्वाधीन कर अपने देश वापस चले गए। उक्त '**मन्त्रात्मक सप्तशती**' में भी समस्त ७०० मन्त्र वीजाक्षरों द्वारा सम्पुटित हैं। ये वीजाक्षर भी प्रायः वही हैं, जो 'वीज - त्रयात्मक सप्तशती' और 'सम्पूर्ण सप्तशती' में प्रयुक्त हुए हैं। अतः जहाँ पाठान्तर के कारण शङ्का होती हो, वहाँ गुप्तावतार बाबाश्री द्वारा स्वीकृत वीजों को ही शुद्ध मानना श्रेयस्कर होगा क्योंकि '**सफल अनुष्ठान**' द्वारा उनकी प्रामाणिकता सिद्ध हो चुकी है। अन्य दोनों के सम्बन्ध में ऐसे किसी सफल अनुष्ठान की सूचना अभी तक कहीं से उपलब्ध नहीं हुई है।

(२) '**प्रचलित सप्तशती**' का '**रात्रि-सूक्त**' एवं श्री वेदव्यास कृत '**लघु चण्डी**' के ३५ से ५० तक के श्लोकों को यदि 'रात्रि-सूक्त' मान लिया जाय, तो यह प्रश्न उठता है कि इस 'सूक्त' को दोनों ऋषियों ने अलग-अलग रूपों में क्यों प्रस्तुत किया ? इसी प्रकार श्रीतत्त्व-बोधाश्रम जी की '**सम्पूर्ण सप्तशती**' में '**परा देवी-सूक्त**' नाम से एक स्वतन्त्र '**देवी-सूक्त**' प्रकाशित किया गया है, जब कि ऐसी मान्यता है कि पञ्चम अध्याय की 'शक्रादि-स्तुति' ही 'देवी-सूक्त' है !

(३) श्री तत्त्वबोधाश्रम जी ने '**सम्पूर्ण सप्तशती**' में 'श्रीमहा-काली-सूक्त', 'श्रीमहा-लक्ष्मी-सूक्त' और 'श्रीमहा-सरस्वती-सूक्त' भी अलग - अलग प्रकाशित किए हैं। इन तीनों सूक्तों की 'फल - श्रुति' के अनुसार जो इन सूक्तों का पाठ नहीं करता, वह यदि 'सप्तशती' का पाठ करता है, तो उसे लाभ के स्थान पर अत्यन्त हानि होती है। ऐसी दशा में पाठ-कर्ता क्या करे ?

श्री शारदा जी के उक्त दोनों प्रश्नों का समाधान यह है कि चाहे 'सप्तशती' हो, या अन्य कोई उपासना-पद्धति हो, उसके पाठ और विधान में विभिन्न प्रकार के क्रम प्रचलित हैं। जिसे जिस 'क्रम' से अभीष्ट सिद्धि मिली, उसने उसी 'क्रम' का प्रचार किया। इसी से यह नियम बन गया और मान्य भी

हुआ कि 'गुरु-देव' या मार्ग-दर्शक जिस ढँग से बताएँ, उसी प्रकार **'सप्तशती'** का पाठ या अन्य कोई भी उपासना करनी चाहिए।

'सप्तशती'-साधना के अन्य भी अनेक रूप प्रचलित हैं और लोग उनसे अभीष्ट लाभ भी उठा रहे हैं। यथा—**'रुद्र-चण्डी'**, जो 'रुद्र - यामलोक्त' तान्त्रिक चण्डी - पाठ है और बङ्गाल, आसाम आदि में बहु-मान्य है। जिन्हें समयाभाव है, वे **'सप्त-श्लोकी'**, **'त्रयोदश-श्लोकी'**, **'सप्तशती-सार'** और **'गुप्त सप्त-शती'** आदि संस्करणों से अपना अभीष्ट सिद्ध करते हैं।

**'देवी-माहात्म्य'** के अभी अनेक रूपों का शोध होना शेष है। मार्कण्डेय-पुराणोक्त **'सप्त-शती'** मूलतः **'नव-शती'** थी, जिसकी **'ताड़-पत्र'** पर लिखी पाण्डुलिपि दक्षिण भारत में आज भी सुरक्षित है और जिसका परिचय 'चण्डी' में प्रकाशित किया जा चुका है। इसी प्रकार 'श्रीमद् - देवी-भागवत' में महर्षि वेद-व्यास कृत 'वृहत्' और 'वृहत्तर चण्डी-पाठ' के दो स्वरूप और उपलब्ध होते हैं। अन्य अनेक पुराणों में भी 'चण्डी-माहात्म्य' के विविध रूप खोजे जा सकते हैं।

अतः 'सप्तशती' के सम्बन्ध में उठनेवाली जिज्ञासाओं से किसी को किंकर्तव्य-विमूढ़ नहीं होना चाहिए। **'फल-श्रुति'** में लिखी ऐसी बातों से भी विचलित नहीं होना चाहिए कि यदि इस 'सूक्त' या 'स्तोत्र' का पाठ न किया जायगा, तो उपासना या साधना निष्फल होगी या किसी प्रकार का पाप लगेगा क्योंकि इस प्रकार की 'अतिशयोक्तियों' का उद्देश्य केवल यह है कि पाठ - कर्ता में उस 'सूक्त' या 'स्तोत्र' के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो और वह उसके पाठ करने में प्रवृत्त हो जाय। मुख्य बात है—**'गुरुदेव' या मार्ग-दर्शक का स्वानुभूत मार्ग-दर्शन। उसी के अनुसार उपासना या साधना करना प्रत्येक जिज्ञासु या शङ्कालु के लिए श्रेयस्कर सिद्ध हो सकता है।** श्रद्धा और विश्वास के साथ सप्तशती के उक्त संस्करणों में से किसी का भी पाठ **'पाठ-कर्ता'** की सब प्रकार से उन्नति ही करेगा, इसमें सन्देह नहीं।

[पृष्ठ २० का शेष]

अनुष्ठान ? मुझसे नहीं होते अब अनुष्ठान ! हाँ—मौन हो जाऊँगा। एक शर्त पर—तू मेरे हृदय-मन्दिर से एक निमिष मात्र को अलग न हो। फिर नहीं बोलूँगा, किसी से नहीं बोलूँगा ! मुझे क्या पड़ी है—किसी से बातें करने की। अपरिचित स्थानों में ? ठोंक लेंगे, पीट लेंगे और क्या करेंगे। मैं बोलूँगा ही नहीं, पर तू बातें करती रहना मुझसे ! तूने बातें करना छोड़ा और मैंने मौन छोड़ा। मैं थोड़े ही ले रहा हूँ मौन ! तू कहती है बातें करने को, तो दूसरों से बातें करती रहेगी ? साल, दो साल, छः मास, चार मास, दो मास ? कितना ! नहीं, हमें तो पहिले कह दे। नहीं, नहीं, कोई आवश्यकता नहीं, जैसा तू चाहे करना। मैं अभी से मौन···नहीं तू कहेगी, तब से पर बातें तो करती रहेगी न ? मैं बातून हूँ, तुझे हरा लूँगा ! तू तो बस, मेरे हृदय में बैठी बातें करती रह। देख तो सही।

तो क्या, तू इस तरीके से उस त्रि-गुणा मूर्ति को भुलवाना चाहती है ? ना अम्मा, ना ! ऐसा मत कर। वही तो मेरा जीवनाधार है। अम्मा, तू तो उसी रूप में रह। बस, तेरे उसी रूप से मेरा कल्याण हो जाएगा, मुझे, विश्वास है।

**—स्वामी शाश्वतानन्द सरस्वती**

# श्री बाला-त्रिपुर-सुन्दरी स्तोत्र

रचयिता : पं० काशीप्रसाद शुक्ल 'वैद्य'

जय त्रिपुरे ! बालाम्ब ! बाल - रवि - सम अरुनारी,
चन्द्र-भाल मनि - मुकुट इन्द्र - धनु-सी दुति - धारी ।
कुण्डल-कलित कपोल नासिकाऽऽभरन उजारो,
बहु-मनि - मुक्तक - हार वक्ष ग्रीवा - छवि न्यारी ।
पुस्तक-अभय-सुमाल - वरु वर-दायिनि-सुख - सागरी,
प्रणत - भक्त - प्रतिपालिनी कल्याणी गुन - आगरो ।।१
भूषन - भूषित बाहु - चतुर कटि किङ्किनि सोहै,
नूपुर - ध्वनि पद - पद्म अरुनिमा जन - मन मोहै ।
विकसित अरुण मृणाल मञ्जु आसन आसीना,
सेवत सुकृत सुशील सेविका सौम्य प्रवीना ।
जन - हित परम दयालुनी, करत सदा अनपायिनी,
अशरण-शरण - प्रदायिनी, सेवक-जन सुख-दायिनी ।।२
दर्शन - अर्चन - हेतु सुरासुर तव ढिग आवत,
महिमा अमित अपार सिद्ध - मुनि गण नित गावत ।
ध्यानी ध्यान - धुरीण हृदय महँ धरि धृति ध्यावत,
मन-वाञ्छित परमार्थ परम गति पर - पद पावत ।
मेटहिं त्रैविध ताप निज, जनम सफलता लहहिं जन,
तव करुणा-बल ते जननि ! सफल मनोरथ गहहिं मन ।।३
जय मणि - द्वीप - निवासिनि, वासिनि जग - सारे,
अनुपम शक्ति - विलास - पुञ्ज जन-हृदय सँवारे !
थिति-लय-सर्ग कुतूहल कौतुक - केलि-कला विस्तारे,
अकथ अलौकिक चारु चरित तव अम्ब, अमित सुख-सारे !
हरि-हरादि जानें नहीं, नेति - नेति निगमादि कहै,
जिनहिं जनावहु अम्ब ! तुम, ते तुम-मय ह्वै रमि रहे ।।४

काली तारा सुन्दरी पीत-पट-वारी मां धूमा छिन्ना,
भैरवी भवानी मातङ्गी कमला वर-दायिनि मां भुवना ।
अद्‌भुत असंख्य बहुरूपों की सब भाँति असम्भव है गणना,
बालाम्ब ! तुम्हीं सब रूपों में हो विराज रहीं भिन्नाऽभिन्ना ।
माया अपरम्पार तव, जानि न जावे जतन करि,
जा पर होहु दयालु तुम, करि करुणा हित ध्यान धरि ।।५
सो जानै कछु भेद जननि ! तव मति - अनुरूपा,
कहि न सकत सोउ ऐक्य - भाव वस भो तद्‌-रूपा,
लीला - चरित विलोकि भक्त - जन मनहिं अनूपा,
भक्ति - भावना - भूत पूत सुन्दर सुख - रूपा ।
अगुनहि सगुन - स्वरूप महँ, सेवत पावत परम पद,
परिपाटी जनकादि की, सुघर सलोनी सुचि सुखद ।।६
श्रीगुरु शीसहिं थापि हृदय महँ देव बिठावै,
'स्वात्मा - गुरु - मनु - देव' - चतुष्टय एक बनावै ।
धरि धृति साधक - श्रेष्ठ, साधना - सिद्धि सजावै,
अनपेक्षित अणिमादि भुक्ति - मुक्तिहु दोउ पावै ।
सिद्धों का सिद्धान्त है, सदा सत्य शङ्का - रहित,
सानुभूत विज्ञान-मय, यह नितान्त गुण-गण सहित ।।७
विन्दु - त्रिकोण - षडस्र-अष्ट-दल-नव-योन्यात्म-स्वरूपे,
वृत्त-सदन-त्रय-संयुत बाला - त्रिपुरा - मन्त्र - अनूपे !
पञ्च - तत्त्व - मय यामिनि अर्चन पूर्ण करे सुख-रूपे,
स्वात्म - समर्पण करे सविधि विश्वेश्वरि विद्या-भूपे !
ऋद्धि-सिद्धि सुख-वृद्धियाँ, बिन प्रयास सब सुलभ नित,
जग-वन्दित सुख-मय सदा, शतञ्जीव दुख-रुज-रहित ।।८
वाग्भव - काम - शक्ति–त्र्यक्षर वर महा-मन्त्र जो जापै,
बल - वैभव सत्कीर्ति विमल जग में सो थापै ।
नृपहू बैरी-होय सदा साधक सों काँपै,
ताहि कहा भय - भीति प्रसन्ना जननी जा पै ।

माँ के लाल ललाम नित, शक्ति-मान विज्ञान-निधि,
साभिमान साऽहं भजहिं ब्रह्म, शोक-दुख-रुज-रहित ।।९
बाला के बालक वीर-धीर कौतुकी कुशल कुल-आचारी ।
आगे ही बढ़ते चलें आपदा आवे चाहे अति भारी ।।
निर्बन्ध-निडर निश्शङ्क शान्त अति दान्त मनोज्ञ रूप-धारी ।
परमार्थी प्रेमी दीन-बन्धु समदर्शी नित पर-दुख-हारी ।।
बाला के बल बलवान सदा धन-धाम-धनो सब भाँति सुखी ।
अवनी माँ के शुभ अलङ्कार जन-मानस के जेता प्रमुखी ।।१०
याचना - वञ्चना के त्यागी दाता दयालु पर - उपकारी ।
सर्वत्र प्रकाशे ब्रह्म-जोति अद्भुत अनूप सद्-व्रत-धारी ।।
पाकर माँ का प्यार नित, तन्मय हो तल्लीन ।
गावें गुन-गन जननि के, प्रेम - मगन लव - लीन ।।
हे भक्त-वत्सले ! परा-शक्ति माँ, तुमको मम शत-शत प्रणाम ।
अति गुणातीत नित सिद्धि-प्रदा बालाम्बा तुमको मम प्रणाम ।।११
भव-भय-दुःखाब्धि-तारिणी माँ, निर्वाण-दायिनी को प्रणाम ।
धनदा सत्या पर-ज्ञान-प्रदा,बालाम्बा तुमको नित प्रणाम ।।
ऐंकार - स्वरूपा कल्याणी क्लींकार - गुणोद्भूता धन्या ।
सौंकार - स्वरूपा रूपेशी बाला बालार्क - निभा मन्या ।।
ऊर्ध्वाम्नायेशी अरुणा माँ रक्ताम्बरि रक्त - विलेपी को ।
सौम्या सुन्दरि सर्वेशि रजो-गुण-भूता अम्ब अलेपी को ।।१२
ब्राह्मी विद्या महती माया त्रिगुणात्मक रूप-पोषिणी को ।
वर-पञ्च-प्रेत आसनारूढ़ मा - पञ्चक-भोग-तोषिणी को ।।
करुणा-मयि पञ्च-भूत-आत्मा कल्याणी सब दुख-हरिणी को ।
सिद्धिदा मोक्षदा दिव्य-तमा बालाम्बा सब सुख-सरिणी को ।।
गुह्याति - गुह्य गुप्ता गुह्या गुह्येशी देव -वन्दिता को ।
हर-मौलि धृत वाक्-सिद्धि-प्रदा भगवति बालाति-नन्दिता को ।।१३
शशि-सूर्यानल-त्रिनेत्र-जननो बाला शिव-प्रिया भवानी को ।
वन्दौं नित हृदय हुलास भरे, जगदम्बा शिवा मृणानी को ।।

नहिं चिन्त्याकार-स्वरूपाख्या प्रणवाक्षर-मयी महाऽम्बा को ।
भजते हैं सन्ध्या-रूप भक्त-तारिणि दयालु बालाम्बा को ॥
सत्कीर्ति-योग-धन-सौख्य-प्रदा निर्वाण-दायिनी माता को ।
है नमस्कार सृष्टि-स्थिति-लय-कारिणि मन्त्र-सिद्धि की दाता को॥१४
आवाहन-अर्चन-ध्यान नहीं, परिचर्या-विधि नहिं जानें हम ।
विधि-रहित विधेयाऽशक्यतया आत्मिक गति नहिं पहचानें हम ॥
निर्धनता-आलस-दैन्य हेतु, तव सेवा नहिं कर पाते हैं ।
जगदम्ब ! क्षमा करना, कपूत ही क्षम्य सदा कहलाते हैं ॥
होते कपूत ही हैं सदैव, पर मात कुमात न होती है ।
ममता-मयि माता ही सुत के, सम्पूर्ण कलुष नित धोती है ॥१५
सुख में सुला सुत को, सदा गीले में माता सोती है ।
बालक के स्वास्थ्य-सबलता-रिपु-रुग्-जाल अम्ब ही खोती है ॥
सत्-पूत कपूत बनाने के अणु-वीज अम्ब ही बोती है ।
अभ्युदय-पराजय की शिशु के, जाज्ज्वल्य जननि ही जोती है ॥
जो बनता है वह करते हैं, शुद्धाशुद्धी का भान नहीं ।
मनमानी अपनी पद्धति है, सापेक्ष्य यथार्थ विधान नहीं ॥१६
जपते हैं तव नित महा-मन्त्र, निज का कर्तव्य निभाते हैं ।
जगदम्ब त्रिपुर-सुन्दरि बाला, अति ललित नाम नित गाते हैं ॥
देती हो जो कुछ दया-मयी, उतना ही तो हम पाते हैं ।
खाते हैं जो कुछ बुरा-भला, तुमको भी वही खिलाते हैं ॥
आपत्ति-ग्रस्त रिपु-त्रस्त अम्ब ! कल्याणी तुम्हें पुकार रहे ।
शठता न समझना क्षुधा-तृषा-बाधित बालक पर प्यार रहे ॥१७
भूखा बालक ही तो माँ-माँ कह, माँ को पास बुलाता है ।
अनभिज्ञ अबोध अशक्य, पाणि-पद बल भर खूब हिलाता है ॥
सुत का सुनते ही क्रन्दन, माँ सब काम त्याग कर धाती है।
आकर बालक को आशु उठा, निज छाती से चिपकाती है ॥
भूखे भूषण कवि को माँ ने, 'कवि-भूषण' तुरत बनाया है ।
माँ काली ने भी 'राम-कृष्ण' बेटे को, दूध पिलाया है ॥१८

कवि-गुरु 'कालोदास' को, आत्म - समर्पण मान ।
पल भर में जगदम्ब ने, दिया आत्म - सम्मान ।।
बालाम्ब, जननि ! मुझ बेटे पर, अब तो अविलम्ब दया कर दो
दुख-दैन्य दूर कर एक बार, भरपूर भण्डार-भवन भर दो ।।
दुष्टात्मा दुष्ट दुश्मनों के दुखद-दुख - खम्भ-दम्भ दर दो ।
पद-पद्म-पराग-मलिन्द बनूँ वर-दायिनि, मात यही वर दो ।१९
चौरासी के चक्कर छूटें, टूटें जन्मान्तर - संस्कार ।
तव वीज-मन्त्र के शुभ अंकुर विकसें हिय में बन अलङ्कार ।।
अघ-ओघ अनेकों जन्मों के, हो जाएँ नष्ट जरि क्षार-क्षार ।
छूटे मरणं - जननं जननी - जठरे शयनं यह बार-वार ।।
तारिणि, कल्याणी ! करुणा कर, कर दो मम बेड़ा आर-पार ।
पच्चासी वत्सर बोत चले, जाने कब हो जावे पुकार ।।२०
माँ ! माँ होकर भी इस समय अम्ब ! यदि तेरी कृपा नहीं होगी ।
बतला दो अज्ञ-अभागे सुत शरणागत की गति क्या होगी ।।
शैशव में ही मम जननी ने त्यागा, उनका नहिं मिला प्यार ।
तो क्या ! तुम भी अब त्यागोगी माँ, देखूँ अब किसका द्वार ।।
शरणागत पाहि अम्ब ! अब तो अन्तिम आ गया किनारा है ।
वर-दायिनि ! कुछ तो दया करो, दूसरा न अन्य सहारा है ।।२१
मैं तो अब त्याग नहीं सकता, पद-पद्म-कल्प-तरु की छाया ।
है पूर्ण भरोसा बेटे को, करती है प्यार महा-माया ।।
मो सम अपराधी अति महान, पापघ्नि नहीं माँ तुम समान ।
यह जान जननि ! नालायक को, करुणाकर कर दो क्षमा-दान ।।
पद-पद पर होते हैं असंख्य अपराध, पुत्र के अलबेले ।
है कौन सिवा जननी के, जो अपराधों को सुत के सह ले ।।२२
धरती पर गिरे पदाती को, अवलम्ब सदा अवनी है ।
आपत्ति-काल में बालक की रक्षिका मात्र जननी ही है ।।
यह जान जननि ! पद-पद्मों में पद-पुष्पाञ्जलि स्वीकार करो ।
समुचित नहिं होगा त्याग, अम्ब ! बेटे पर करुणा प्यार करो ।।
सत् - श्रद्धा - विश्वास से, करे पाठ शत बार ।
बाला - त्रिपुरा का मिले, वर - प्रसाद सुख - सार ।।२३ ** *

# भारत की आर्ष विद्याओं पर भ्रामक साहित्य

• पण्डित गङ्गाशरण शुक्ल 'आचार्य वृहस्पति'

स्वतन्त्रता के साथ-साथ भारत में लेखन-कार्य में भी स्वच्छन्दता आई है--जैसा मन में आया, लिख डाला ! भारतीय विद्याओं (ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र, इन्द्रजाल आदि) में से जिस किसी विद्या की दुकान चलानी हो, दो-चार अंग्रेजी की पुस्तकें पढ़ लीं और अपना 'शोध-ग्रन्थ' लिख डाला ! मस्तिष्क - पुराण के अनुसार चार-छः कहानियाँ रच दीं, जिनमें स्वयं के कपोल-कल्पित विचित्र अनुभव भर दिए--बस, बन गए स्वयम्भू भगवान्, दैवज्ञ, ज्योतिषाचार्य, तन्त्राचार्य और न जाने क्या-क्या ! प्रयाग के विगत **'माघ-मेले'** में तो एक नाम-पट में **'षड्-यान्त्रिक'** होने का दम्भ किया गया था ! 'तन्त्र' की इस शाखा का विकास कदाचित् इस २०वीं शताब्दी में हुआ है !

आइए, हम आपको ले चलते हैं भारत-भ्रमण पर, जहाँ धर्म की दूकानें सजी हैं। प्रतिवर्ष यहाँ से असंख्य लोग आशीर्वाद लेकर **'स्वर्ग'** में अपना स्थान सुरक्षित कर लेते हैं। नित्य आधुनिक उपकरणों से यहाँ **'शक्ति - पात'** होता है। घबड़ाएँ नहीं, आपको जङ्गल जाने की आवश्यकता नहीं, **'स्वर्ग का आनन्द'** भारत के आधुनिक **'आश्रमों'** में उपलब्ध है--नारी-सौन्दर्य से लेकर प्राकृतिक सौन्दर्य तक ! इन आश्रमों में योगाभ्यास के पश्चात् आज के **'योगी'** शरीर-सौष्ठव हेतु अंग्रेजी व्यायाम करते हैं। जङ्गल में जाकर तपस्या करनेवाले तो पलायन-वादी हैं ! गङ्गा जल से पाप नहीं घटता ! भूत-प्रेत, आत्मा आदि— ये सब व्यर्थ की बातें हैं—ऐसा इस आधुनिक **'आश्रम'** के **'गुरु जी'** का कहना है ! इसीलिए **'आश्रम'** में सारी व्यवस्था 'गृहस्थ-आश्रम' जैसी है। स्नान के लिए **'गीजर'** लगा है ! महात्मा गुरु जी छोटे - मोटे चमत्कार भी दिखाते हैं--हवा से भभूत निकालते हैं और फल, रुद्राक्ष आदि प्रदान करते हैं ! बड़े चमत्कार दिखा दें, तो इन्द्र-जालियों (जादूगरों) का क्या होगा ? यह रहा आधुनिक **'आश्रम'** और उसके **'गुरु जी'** का संक्षिप्त परिचय !

उक्त प्रकार के 'आश्रमों' एवं 'गुरुओं' के प्रेरक या मार्ग-दर्शक रहे—भारत के प्रख्यात समाज-सुधारक पूज्य श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती। **'आर्य-समाज'** के संस्थापक, विद्वान्, महात्मा, समाज-सुधारक ही नहीं, देश में एक अलग ही **'समाज'** की स्थापना करनेवाले इन 'महा - पुरुष' को कौन नहीं जानता ! **'आर्य-समाज'** के प्रचार एवं उत्थान की कल्पना में आपने शास्त्र-वर्णित विधि-निषेध की मर्यादा को तोड़ डाला, भूत - प्रेत को काल्पनिक कह कर हँसी में उड़ा दिया और **'कुतर्क'** के कुल्हाड़े से **'तर्क'** की धज्जी उड़ा दी। स्वामी जी के अनुसार **'प्रेत'** होता ही नहीं, तो **'प्रेत - साधना'** का प्रश्न ही नहीं उठता ! सच है, उन्हें आजीवन **'भूत - प्रेत'** नहीं मिला। क्यों नहीं मिला ? इसका उत्तर उन्हें नहीं मालूम था। जैसे मैं किसी से कहूँ कि **'प्रकाश लेकर जाओ, अँधेरा खोज लाओ। मोमबत्ती जला कर अँधेरे को आमन्त्रित करो !'** ठीक वैसे ही पूज्य स्वामी जी तो स्वयं **'गायत्री-मन्त्र'** के पारायण-कर्त्ता एवं योग के साधक थे। उनके समक्ष **'भूत-प्रेत'** कैसे आ सकते थे ? उनका भूत-प्रेत खोजना व्यर्थ ही था। सच तो यह है कि वे **'गायत्री'** छोड़कर **'प्रेत-सिद्धि'** के चक्कर में पड़े ही नहीं। हाँ, विष से उनकी मृत्यु हुई, अतः **'अकाल-मृत्यु'** के कारण वे **'प्रेत - योनि'** में अवश्य गए होंगे, तब उनकी खोज अवश्य सार्थक हुई होगी क्योंकि आत्मा **'सत्य-काम'** और **'सत्य-सङ्कल्प'** होती है।

पूज्य स्वामी जी ने **'वेद'** को छोड़कर अन्य सभी ग्रन्थों को काल्पनिक माना है। **'मूर्ति - पूजा'** का खण्डन करके प्रख्यात हुए, किन्तु गम्भीरता से विचार करें। विश्व का कौन-सा ऐसा समाज है, जो 'मूर्ति-पूजक' नहीं। चाहे प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष, प्रायः पूरा मानव-समाज **'मूर्ति'** या प्रतीक के माध्यम से ही आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। 'मूर्ति-पूजा' तो एक श्रेष्ठ अनुभूत साधन है। जो **'स्थूल'** पर अपने मन को केन्द्रित नहीं कर सकता, वह **'सूक्ष्म'** तत्त्व पर कैसे ध्यान लगा सकता है! बिना **'स्थूल'** का सहारा लिए, **'सूक्ष्म'** को हृदयङ्गम करने का उसका प्रयास तो वैसा ही होगा, जैसे कोई 'वर्ण-माला' के ज्ञान से तो रहित हो, किन्तु वेद पढ़ने को उद्यत हो।

अहङ्कारी मानव की यह प्रवृत्ति होती है कि वह अपने मत को स्थापित करने के लिए कुछ भी कर सकता है। पूज्य स्वामी जी जैसे महा-पुरुषों ने भी इस प्रवृत्ति का परिचय दिया है। ऐसे लोगों में महान् पुरुषों के सारे गुणों के होते हुए भी **'मर्यादा-उल्लङ्घन'** का 'भारी अवगुण' दृष्टि - गत होता है। विद्वत्ता के बल पर, कुतर्कों के सहारे इन महा-पुरुषों ने 'अमर्यादित' को 'मर्यादित' सिद्ध करने का निन्द्य प्रयास किया है, इसमें सन्देह नहीं। प्रत्येक कार्य की एक मर्यादा होती है, जो उस कार्य के करनेवालों में परम्परागत-रूप से विद्यमान रहती है। उसी **'परम्परा'** को तोड़ना **'अमर्यादा'** है।

एक और उदाहरण लें। मूर्धन्य विद्वान् आचार्य श्रीराम शर्मा जी के नाम से आज कौन परिचित नहीं है? 'अखण्ड ज्योति', 'युग-निर्माण' तथा अध्यात्म-साहित्य का देश में व्यापक प्रचार कर आपने विपुल ख्याति अर्जित की। मथुरा और हरिद्वार में बने भव्य आश्रम आपकी कर्मठता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। 'गायत्री' मन्त्र से सिद्धि प्राप्त कर आपने **'गायत्री'** को हर चौराहे पर बुक - स्टाल पर बिकवा कर अपार धन कमाया। पात्र-कुपात्र का विचार किए बिना ही आपने सभी को यज्ञोपवीत धारण करवा दिया, जैसा कि पूर्वोक्त पूज्य स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने किया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—सभी को **'गायत्री-मन्त्र'** से दीक्षित कर आप दोनों महा-पुरुषों ने गायत्री मन्त्र को इतना सामान्य कर दिया कि उस पर से सभी की आस्था विलुप्त हो गई। **'मन्त्र'** के सम्बन्ध में लगे प्रतिबन्ध **'यस्मै कस्मै न दातव्यं', 'गोपितं रक्ष'**—की मर्यादा तोड़ने में आपने कोई कसर न छोड़ी और **'गायत्री'** को **'धनार्जन'** एवं **'यशार्जन'** का साधन बना दिया!

उक्त महानुभावों का कथन है कि **'वेद'** में ऐसा कोई **'प्रतिबन्ध'** नहीं निर्दिष्ट है कि **'गायत्री मन्त्र'** का किसे अधिकार है और किसे नहीं। जिन ग्रन्थों में इस प्रकार के **'प्रतिबन्ध'** लिखे हैं, वे सब ब्राह्मणों से प्रेरित होकर स्वार्थ-वश लिखे गए हैं। इस सन्दर्भ में यह विचारणीय है कि **'वेद'** मन्त्रों का सङ्कलन है। 'वेद' में सम्पूर्ण साहित्य सूत्र-रूप से ही निहित है। 'वेद' के मन्त्रों की व्याख्या करने के लिए तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक है। केवल **'वेद'** को ही प्रमाण मानकर चलनेवाले लोग वैसे ही हैं, जैसे कोई प्राणाचार्य औषधि के गुणों को जानकर कहे कि **'ज्वर में यही औषधि प्रयुक्त होती है, चाहे ज्वर किसी को भी हो और वह चाहे जैसा हो क्योंकि इस पुस्तक में न तो आयु का प्रतिबन्ध है और न मात्रा का।'** इस कथन से उस 'प्राणाचार्य' की योग्यता का अनुमान कोई भी लगा सकता है। योग्य प्राणाचार्य तो वही है, जिसे निदान, औषधि और औषधि-निर्माण--सभी का ज्ञान हो। यह तो सामान्य समझ की बात है कि 'औषधि' की चर्चा औषधि के ग्रन्थ में होगी, किन्तु उसके उपयोग के विधान को चर्चा अन्य ग्रन्थों में मिलेगी। इसी प्रकार 'वेद' मन्त्रों का सङ्कलन मात्र है। उसके मन्त्रों के प्रयोग, साधना में अधिकार तथा अनधिकार की चर्चा अन्य ग्रन्थों में ही प्राप्य है। अतः केवल **'वेद'**

को स्वीकार कर तत्सम्बन्धी अन्य साहित्य को तिरस्कृत करनेवाले की दशा वैसी ही है, जैसी उस प्राणाचार्य की, जो 'औषधि-शास्त्र' के सिवा भैषज्य-सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों की उपेक्षा करता हो।

भारतीय आर्ष विद्याओं के सम्बन्ध में वर्तमान समय के प्रकाशित ग्रन्थों में वर्णित कथाएँ, जिज्ञासु पाठकों को काल्पनिक दुनिया में विचरण कराते हुए वास्तविकता से बहुत दूर ले जाती हैं। पं० नारायणदत्त श्रीमाली द्वारा लिखित ग्रन्थों में प्रायः मन्त्र अशुद्ध एवं अपूर्ण ही मिलते हैं, तो उनसे पाठक कहाँ तक लाभ उठा सकेंगे? इसी प्रकार आज कितने ही अधकचरे, व्यवसायी एवं स्वयम्भू स्वामी, महात्मा, भगवान्, तन्त्र-निष्णात, मन्त्र-शास्त्री आदि बननेवाले महानुभावों द्वारा **'परम्परागत मर्यादा'** का उल्लङ्घन करते हुए तन्त्र-मन्त्रादि सिद्ध भारतीय विद्याओं के सम्बन्ध में भ्रामक प्रचार किया जा रहा है, जिससे उन्हें भले ही कुछ काल के लिए **'यश'** और **'वैभव'** का सुख मिल जाय, किन्तु पूरे मानव समाज की अपार क्षति हो रही है। आज भूकम्प, अग्नि-काण्ड, तूफान, अति - वृष्टि, अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोपों से ही नहीं, पथ-भ्रष्ट मानव-समूहों द्वारा स्वयं अखिल मानव समाज का जो सर्वनाश हो रहा है, वह प्रत्यक्ष ही है।

इस लेख का उद्देश्य किन्हीं दिवङ्गत या जीवित महा-पुरुषों या मनीषियों की अवमानना करना नहीं है। उन्होंने मानवता के हित में जो कुछ किया या कर रहे हैं, वह प्रशंसनीय है और उसके लिए श्रद्धेय भी हैं, किन्तु **'परम्परागत मर्यादाओं'** का खण्डन कोई भी करे, वह अक्षम्य है और उसकी आलोचना आवश्यक है। जहाँ तक भारतीय आर्ष विद्याओं का सम्बन्ध है, उनका अध्ययन संस्कृत - भाषा के किसी सुयोग्य विद्वान् तथा उस विद्या के अनुभवी ज्ञाता के ही संरक्षण में करना चाहिए, अन्यथा धोखा खाने की पूर्ण सम्भावना है। तन्त्र, मन्त्र जैसी विद्याओं का ज्ञान न होने पर भी लेखक बनने का लोभ आज के व्यवसायी और यश-लोलुप सम्वरण नहीं कर पाते, यह अति क्षोभ - जनक है। ऐसे लोगों को स्वतन्त्रता नहीं, स्वेच्छाचारिता चाहिए। उनके **'पशुत्व'** का विकाश ही उनकी **'प्रगति'** का प्रतीक है। उसी **'प्रगति'** के पथ पर अग्रसर आज की अधिकांश तन्त्र-मन्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, धर्म आदि की दूकानें हैं। जिज्ञासु पाठकों को, आशा है, भारत की आर्ष-विद्याओं के आधुनिक प्रचारकों की एक झलक मिल गई होगी। यदि वे इससे कुछ सतर्क हो सकें, तो अपने इस लेख को सार्थक मानूँगा।

**सनातन धर्म की गली, पुराना कटरा** • **प्रयाग (उ० प्र०)-२**


# विज्ञान-योग

मूल्य ५ रु०

# निमहरा माई (मां शारदा)

• रामकृष्ण तिवारी, सैदाबाद, इलाहाबाद, उ० प्र०

हमारा देश भारत धर्म-प्राण देश है। इस देश के गाँव-गाँव में किसी-न-किसी देवता और माँ के किसी-न-किसी रूप की पूजा-अर्चना होती ही है। ऐसे ही एक रूप **'माँ शारदा देवी'** की पूजा **'निमहरा माई'** के नाम से 'प्रयाग' जनपद के 'सैदाबाद' में होती आई है। यहाँ के पुजारियों द्वारा इन 'माई' के पूज्य स्थान का ५०० वर्ष का इतिहास ज्ञात होता है, जिसके अनुसार 'सैदाबाद' से लगभग ३-४ कि. मी. वायव्य कोण में 'आसेपुर' और 'पुलमा' नामक दो गाँव हैं। यहाँ प्राचीन काल में 'भर' - राजाओं की राजधानी थी। आज भी उन राजाओं के किले के अवशेष वहाँ दृष्टव्य हैं। उसी किले में एक स्थान पर माँ का विग्रह उपेक्षित रूप में पड़ा था। उस विग्रह की पूजा 'आसेपुर' के निवासी 'ननकूराम पुष्पजीवी' की पत्नी श्रीमती जियाऊ देवी ने करनी आरम्भ की। कुछ समय पश्चात् जियाऊ देवी को स्वप्न हुआ, मानों माँ कह रही हैं कि 'मेरे विग्रह की स्थापना किसी सार्वजनिक स्थान पर करो, जिससे मैं तुम्हारा एवं अन्य भक्तों का कल्याण कर सकूँ।'

सैदाबाद बाजार के एक सार्वजनिक स्थान होने से, एक बरई की सहायता से, जिसके वंशज वर्तमान काल में नहीं हैं, ननकूराम पुष्पजीवो ने बाजार के पश्चिम में एक नीम के पेड़ के नीचे चबूतरा बनाकर उक्त विग्रह की स्थापना की। कुछ समय बाद किसी ओझा ने माँ के विग्रह के पास रात्रि में सुअर का बच्चा काट कर कुछ पूजा-अर्चना की। सुअर का बच्चा काटने के बाद नीम के पेड़ में, जिसके नीचे माँ का विग्रह था, आग लग गई और मूर्ति वहाँ से लुप्त हो गई। नीम का पूरा पेड़ जलकर राख हो गया, परन्तु उस पेड़ के नीचे एक छोटा-सा ३-४ हाथ का पोपल का पौधा था, वह बच गया।

माँ के विग्रह को न देखकर जियाऊ देवी, जो माँ की पुजारिन थीं, बहुत शोकातुर हुईं और खाना-पीना छोड़कर अनशन करने लगीं। लगभग ७-८ दिन बीते होंगे कि माँ ने रात में उन्हें स्वप्न दिया कि 'तुम हैरान मत हो। वह स्थान दूषित हो गया है, जिससे मैं प्रकट नहीं हो रही हूँ। स्थान शुद्ध होने पर मैं प्रकट हो जाऊँगी।'

३० वर्ष पूर्व सैदाबाद ग्राम के श्री सुकुरू तिवारी ने कलकत्ते के किसी मारवाड़ी के लिए पुत्र-प्राप्ति हेतु उस स्थान में अनुष्ठान किया। फल-स्वरूप उस मारवाड़ी को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई और उस मारवाड़ी ने मन्दिर (मण्डप) का नवीनीकरण कर वहाँ एक पक्का कुआँ तथा धर्मशाला भी बनवा दी। मन्दिर के वर्तमान पुजारी उन्हीं ननकूराम पुष्पजीवी के वंशज हैं।

मन्दिर **'निमहरा माता'** के नाम से विख्यात है। प्रति सोमवार मेला लगता है। श्रावण-सप्तमी' शारदीय एवं वासन्तिक नवरात्र में भक्तों की भीड़ देखते ही बनती है। यह स्थान प्रयाग से बनारस जाने-वाली उत्तर-पूर्व रेलवे के सैदाबाद स्टेशन से ३ कि. मी. पर और जी० टी० रोड से १ कि. मी. वायव्य कोण में स्थित है।

रजि० सं० ३२६८१/५७ ] दिसम्बर, १९९१ [ रजि० सं० ए० डी० ९६
सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक : श्री ऋतशील शर्मा, परा वाणी प्रेस, इलाहाबाद-२११००६

# बिहार में शक्ति-साधना

(पूर्वार्द्ध खण्ड)

## इतिहास एवं प्रेरणा-दायक व्यक्तित्व

उत्तरार्द्ध खण्ड

## बिहार-प्रदेश के देवी-मन्दिर

मूल्य १५-००

मूल्य ८-००

## 'शक्ति-पीठ' काशी

काशी का माहात्म्य, काशी के सिद्ध-महा-पुरुष एवं पञ्च-कोशी यात्रा सहित ।